॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-09-22
प्रकाशन दिनांक = 05-09-22

सितम्बर २०२२

वर्ष ५१ : अङ्क ११
दयानन्दाब्द : १९८
विक्रम-संवत् : भाद्रपद-आश्विन २०७९
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२३

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- देखना एक दिन फिर दयानन्द फिर..... ४
- गहरा षड्यन्त्र ७
- नासदीय सूक्त और आधुनिक विज्ञान-६ ९
- आर्यसमाज की दो भुजाएं-एक वेद..... १३
- भारतीय शिक्षा बोर्ड १४
- लाला दीपचन्द आर्य १६
- रामायण के ये कैसे रहस्य ! १९
- मन्त्र - तन्त्र - यन्त्र २३
- स्वराज्य शब्द के जन्म दाता ऋषि दयानन्द २५
- सुन्दरता २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण - ४००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) - ६००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥

—ऋ० ७।३२।१३

शब्दार्थ—अखर्वम् = क्षुद्रतारहित **सुधितम्** = सुचिन्तित **सुपेशसम्** = सुन्दर रूप-रेखावाला **मन्त्रम्** = मन्त्र, गुप्त परिभाषित विचार **यज्ञियेषु** = यज्ञयोग्य, यज्ञ के अधिकारियों में **आ** = पूर्णरूप से **दधात** = डालो। **पूर्वीः+चन** = पूर्व से प्राप्त **प्रसितयः** = बन्धन **ताम्** = उसको **तरन्ति** = लाँघ जाते हैं, छोड़ जाते हैं, **यः** = जो **इन्द्रे** = परमेश्वर के निमित्त **कर्मणा** = कर्म से **भुवत्** = समर्थ होता है।

व्याख्या—पता है, पाप क्या होता है? कुकर्म क्या होता है? मनु महाराज ८।८२ में कहते हैं—**नानृतात्पातकं परम्**—झूठ से बढ़कर गिरानेवाला [पाप] कोई नहीं है। पातक कहो, पाप कहो, एक बात है। पातक जितने हैं, प्रायः उनमें दूसरों के साथ सम्बन्ध अवश्य होता है। हिंसा, जब तक हिंस्य न हो, नहीं हो सकती। बोलना दूसरे के साथ होता है, मिथ्या=बोलने में भी दूसरे की, श्रोता की आवश्यकता पड़ती है। चोरी पराये माल की होती है। ब्रह्मचर्य-नाश=मैथुन में भी दूसरा चाहिए। दूसरा न हो, तो अभियान क्या और किसके आगे करें !

पाप के आचार से पहले पाप का विचार होता है। पिक्चर अपने मन में होता है, उसको वाणी से उच्चार कर दूसरों तक पहुँचाते हैं। वेद कहता है—विचार हर एक को न दो किन्तु **'दधात यज्ञियेष्वा'** = जिसमें परोपकार-भावना है, यज्ञ-भावना से जो भावित हैं, ऐसे सदाचारी धर्मात्मा सज्जनों को विचार दो।

किन्तु वह मन्त्र=विचार अखर्व हो=क्षुद्र न हो। क्षुद्र विचारों से संकीर्णता उत्पन्न होती है, उससे स्वार्थ उत्पन्न होकर समाज-भावना का विनाश होता है। उच्चाशय के भावों से भरपूर विचार ही संसार के लिए कल्याणकारक होते हैं। साथ ही वह सुधित=सुचिन्तित होना चाहिए। ऐसा नहीं कि जो विचार आया, झट से उच्चारण कर दिया। नहीं, उसे सोचिए, उसके अनुकूल-प्रतिकूल सारे पहलुओं पर गम्भीरता से विचार कीजिए। जिसको विचार देने लगो, देख लो कि उसने इसे भली-भाँति धारण कर लिया है, समझ लिया है? अन्यथा, यह अपनी अधर्म बुद्धि से हानि करेगा। जब कोई विचार देने लगो, उसकी भाषा ललित हो, उसके समझोने का ढङ्ग मनोहारी हो। उसे इस रूप में जनता के आगे ो जिससे वह स्वयं आकृष्ट हो। सुन्दरता सभी को प्रिय है। भगवान् भी सत्य और शिव होते हुए सुन्दर हैं। वेद के शब्दों में भगवान् स्वः=सु+अस्=सुन्दर सत्तावान् हैं। भगवान् ने इस सृष्टि में कितना सौन्दर्य भर दिया है ! यह जहान कितना रूपवान् बनाया ! तुम क्यों कुरूप सृष्टि रचो? तुम्हारी सृष्टि भी सुन्दर होनी चाहिए।

जब किसी को विचार देने लगते हैं, तब वे कर्म हो जाते हैं। कर्मों को अनेक ज्ञानी बन्धन का हेतु मानते हैं। कुछ सीमा तक यह बात है भी सत्य। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि अधम योनियों में पड़े, ज्ञान-प्रकाश से रहित हुए विवशता का जीवन बिता रहे हैं और नाना दुःख पा रहे हैं, यह क्यों? जब इन्हें कर्म की स्वतन्त्रता थी, तब इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके कुकर्म किये, उसका फल यह वर्तमान दुर्दशा है। कर्म से बन्धन मिला, कर्म से ही वह कटेगा, अतः वेद कहता है–

पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥

पहले के बन्धन उसे छोड़ते हैं, जो प्रभु के निमित्त कर्म से समर्थ होता है।

वासना बन्धन का कारण है, जो सांसारिक वासनाओं से वासित होकर कर्म करेगा, वह बन्धन में पड़ेगा, अतः सांसारिक वासनाओं को त्यागो। अब जो कर्म करो, प्रभु के निमित्त करो, अर्थात् अपने-आपको भगवान् का हथियार बना लो। अब सब इच्छाएं, आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ छोड़ दो, जो प्रभु कराये, वह करो। प्रभु के कराने से कर्म होने की एक पहचान है–ऐसा कर्मकर्ता हानि लाभ से विचलित नहीं होता, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि प्रभु जो करते हैं, भला करते हैं। जाने, प्रतीयमान हानि में कोई लाभ छिपा हो ! वेद जीवनभर कर्म करने का ही नहीं, कर्म करते हुए जीने की इच्छा का आदेश करता है, यथा–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ –य० ४०।२

इस संसार में मनुष्य आयुभर कर्म ही करता हुआ जीने की इच्छा करे। इस भाँति तुझमें कर्म लिप्त नहीं होंगे, अर्थात् बन्धन का कारण नहीं बनेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है।

यहाँ कुकर्म और अकर्म का निषेध किया जा रहा है कर्म किये बिना रहना प्राणी के लिए सर्वथा असम्भव है। ऐसी दशा में प्राणी को अपना कर्तव्य विचारना चाहिए। उसका विचार करके उसपर आरूढ़ हो जाए। कर्तव्य-ज्ञान वेद भगवान् की वाणी है। वेदानुसार कर्म करने वाला मनुष्य यह सोचे कि मैं प्रभु के आदेश का पालन कर रहा हूँ। ऐसी निष्ठा–भावना से कर्म करने वाला सचमुच भगवान् का करण उपकरण बन जाता है।

प्रभु निर्मित कर्म को निष्काम कर्म भी कहते हैं। अपना आपा भुलाये बिना यह लगभग क्या, सर्वथा असम्भव है। अपना आपा भुलाना=आत्मविस्मरण, आत्म समर्पण के बिना अशक्य है। कर्म की महिमा बतलाते हुए भी वेद का संकेत उसी ओर है। कोई है जो इस संकेत को गहण करे !

धन्यः सः, धन्या च तदीया जननी । ❑❑

पवित्रता

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–विद्वान् सहनशीलता से शुद्ध होता है, बुरा काम करने वाला दान से, छुपकर पाप करने वाला पश्चात्ताप से तथा वेद को जानने वला वेदानुकूल आचरण से शुद्ध होता है ।

देखना एक दिन फिर दयानन्द फिर याद आएगा

–धर्मपाल आर्य

लेप धातु के ऊपर हो या स्वर्णिम इतिहास के ऊपर, कुछ पल ऐसा करके उसकी कृत्रिम आभा एवं स्मृति को दबाया जा सकता है, परन्तु मिटाया नहीं जा सकता। अतीत में ऐसा करने की कोशिश हुई भी लेकिन सत्य दबा नहीं। क्योंकि समय ऐसे दाग खुद धो देता है। सर्वविदित है कि आज देश में बड़े रूप में आजादी का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। देश की आजादी के लिए बलिदान देने वाले असंख्य क्रान्तिकारियों, बलिदानियों के बलिदान रूपी अमृत का आभार प्रकट किया जाना इस महोत्सव का मुख्य ध्येय है। लेकिन पता नहीं क्यों अज्ञात कारणों से राष्ट्र को समर्पित आर्यसमाज से जुड़े अनेकों क्रान्तिकारियों, बलिदानियों का नाम इसमें ना आना संशय प्रकट करता है!

पिछले कई दिनों से आर्यसमाज के विद्वान्, आर्यसमाज की विभिन्न संस्थाओं से जुड़े लोग अथवा आम कार्यकर्ता कहीं ना कहीं निराश नजर आये। कई बन्धुओं ने सोशल मीडिया पर भी अपना आक्रोश जाहिर किया कि आखिर आजादी का अमृत महोत्सव और प्रशासनिक स्तर पर आर्यसमाज या महर्षि दयानन्द जी का नाम नहीं!

यानि सवाल अनेकों है और जवाब एक है। महाभारत का एक प्रसंग है कि ज़ब कौरव, पांडवों को मिटाने के लिए छल कर रहे थे। तब पांडव भले ही चिंता में डूबे थे लेकिन कृष्ण मुस्कुरा रहें थे। कृष्ण का मुस्कुराना द्योतक था इस बात का कि धर्म, सच्चाई, तप और बलिदान कभी हराये या मिटाए नहीं जा सकते। यह प्रसंग आज उन नेताओं, लेखकों और संस्थाओं के लिए उपयुक्त उदहारण है कि भारत का स्वतन्त्रता संग्राम बिना महर्षि दयानन्द एवं बिना आर्यसमाज के अधूरा है।

आखिर कहाँ से लाये जायेंगे, सरदार किशन सिंह, अर्जुन सिंह और सरदार अजित सिंह, कहाँ से प्रेरणा मिलेगी किसी सरदार भगत सिंह को, जिसकी २१ वर्ष की तरुण अवस्था में समूची अंग्रेजी हुकूमत थर-थर कांपने लगी थी। वो भी वह हुकुमत जो यह दावा करती थी कि उनके राज्य में कभी सूरज अस्त नहीं होता। कौन डी० ए० वी० जैसी राष्ट्र और धर्म को समर्पित संस्था खड़ी करेगा? जो निस्वार्थ भाव से शिक्षा और देश की आजादी का स्वपन नौजवानों को दे रही थी। कौन लायेगा स्वामी श्रद्धानन्द जैसी हुतात्मा को! जिन्होंने, इस धर्म के पतन को रोकने के लिए, शुद्धि जैसा व्यापक आन्दोलन चलाया। समाज के दबे-कुचले, हीन समझे जाने वाले वर्ग को उठाकर गले से लगाया। यही नहीं अपना धन, घर-परिवार, अपनी काया और सर्वस्व इस देश और धर्म पर न्योछावर करके गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्था खड़ी की, जिससे वैदिक धर्म और राष्ट्र के रखवाले निकले जो विश्व भर में फैले और वैदिक धर्म की पताका फहराई।

कहाँ से विचार डाला जायेगा किसी गुरुदत्त विद्यार्थी के कानों में? जिसे सुनकर दिन रात भूखा-प्यासा रहकर भी वैदिक धर्म और स्वराज्य के लिए शंखनाद करते रहे। आखिर किस माँ की कोख से मानवती आर्या एवं नीरा आर्या जैसी बेटी पैदा होगी? जब इस देश में लड़कियाँ घर की देहरी नहीं लाँघ सकती थी, तब उस बेटी ने राज्यों की

सीमा लांघी और अंगेजी शासन के विरुद्ध आजाद हिन्द फौज के लिए बेड़ियों में जकड़े इस देश के लिए जासूसी की तथा काले पानी की यातना सहकर भी अपनी जुबान नहीं खोली।

यह ऋषि दयानन्द की ही सेना थी। यह स्वराज्य और स्वदेशी के लिए मर मिटने वाली सेना थी। जब खिलाफत के नाम पर विधर्मी मालाबार में हिन्दू बहु बेटियों का जबरन शिकार कर रहे थे, तब यही ऋषि दयानन्द की सेना थी जो एक गैर भाषाई राज्य में चट्टान की तरह अड़ गयी थी। जिसने पाखंडियों और तथाकथित धर्म के ठेकेदारों को ना केवल आइना दिखाया बल्कि हजारों लोगों की अपने मूल धर्म में वापिसी कराई।

यह दयानन्द की ही सेना थी जो हैदराबाद को इस भारत भूमि में मिलाने के लिए रक्त से धरा सींच रही थी जब सत्ता के प्यासे कुछ लोग देश का झंडा कैसा हो ये तय कर रहे थे। तब यही आर्यसमाज के सिपाही महात्मा हंसराज जी थे जो राष्ट्र ध्वज के बीचों-बीच धर्म चक्र की स्थापना कर रहे थे। यह विचार कहाँ से आया? ये सोच कहाँ से आई? कौन था वह योगी, वह तपस्वी जो अपनी जमीन, जायदाद विरासत और परिवार को ठुकराकर, देश भर में स्वदेशी और स्वराज्य की अलख जगा रहा था? जो इस धर्म जाति और राष्ट्र के लिए बार-बार जहर पी रहा था।

कौन इतिहास मिटा सकता है, किसमें दम है! कौन है जो महर्षि दयानन्द जैसा राष्ट्रव्यापी आन्दोलन इस राष्ट्र में खड़ा करने का साहस करे! साहस तो दूर सोच भी नहीं सकता! इस आन्दोलन से ना केवल भारत बल्कि विदेशों तक रह रहे मॉरिशस, फिजी एवं दक्षिण अफ्रीका तक में बैठा हिन्दू समाज भी जाग गया था।

किस के पास वो रबर है जो इस इतिहास को मिटा सके? जिस इतिहास ने पंडित रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, विष्णु शरण दिए, आर्यसमाज के अतिरिक्त कौन लन्दन में इंडिया हाउस खड़ा करेगा? जो इस देश की स्वतन्त्रता के मतवाले क्रांतिकारियों का तीर्थ स्थान बना। अगर श्याम जी कृष्ण वर्मा इंडिया हाउस खड़ा ना करते तो शहीद मदनलाल ढींगरा और वीर सावरकर जैसे क्रन्तिकारी कहाँ से आते? अगर शाहजहाँपुर में आर्यसमाज मंदिर ना होता तो कैसे कोई अशफाक उल्ला खां खुद को आजादी की वेदी पर अर्पित करता?

आर्यसमाज ना होता तो कहाँ से भाई परमानन्द आते? कौन अमेरिका में आजादी की लड़ाई के लिए समर्पण और सहयोग करता? आर्यसमाज ना होता तो सांडर्स को मारने वाले भगतसिंह और उसके साथियों को कौन ठहरने के लिए जगह देता? आखिर क्यों क्रान्तिकारी पुलिस से बचने के लिए डी०ए०वी० कालेज एवं आर्यसमाज मंदिरों में ही शरण लेते थे? सवाल ये भी है क्यों देश की आजादी के लिए मर-मिट रहे, लड़ रहे क्रन्तिकारी गुरुद्वारों, पौराणिक मठ, मंदिर और मस्जिदों में नहीं जाते थे?

आर्यसमाज ही तो था जो पंजाब केसरी लाला लाजपत राय को खड़ा कर सकता था। राजस्थान केसरी कुंवर प्रताप सिंह वारहट को खड़ा कर सकता था। राजनैतिक मैदान में कोई चौधरी चरण सिंह खड़ा हुआ तो कोई छोटूराम आगे आया। आर्यसमाज ना होता तो पंजाब नैशनल बैंक कैसे खड़ा होता? जो उस दौरान क्रांतिकारियों के लिए पैसा जमा करने, उनकी मदद करने के लिए और स्वदेशी स्वराज्य पर मोहर लगाने के लिए खोला गया था।

जब सारा भारत अंग्रेजों की दासता को अपना भाग्य समझकर सोया था। देशवासी अपनी गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की बजाय उल्टा उनका श्रृंगार कर रहे थे। राजनैतिक और मानसिक दासता

इस तरह लोगों के दिमाग में घर कर गयी थी कि देश की स्वतन्त्रता की बात करना भी लोगों को एक स्वप्न सा लगने लगा था। देश और समाज को सती प्रथा, जाति प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, मूर्ति पूजा, छुआछूत एवं बहुदेववाद आदि बुराइयों ने दूषित कर रखा था। विभिन्न आडम्बरों के कारण धर्म संकीर्ण होता जा रहा था। तब यही ऋषि दयानन्द की सेना थी जो समूचे देश में पत्र पत्रिकाओं के लेखन से लेकर हर एक मैदान में अंग्रेजी हुकूमत और मुगल दासता से युद्ध कर रही थी।

ये सेना लड़ रही थी मुगल दासता की मानसिकता से, ये सेना लड़ रही थी पाखंड और अंधबिश्वास से। ये दयानन्द के ही सिपाही थे जो छुआछूत एवं भेदभाव से लड़ते हुए भी अपने प्राणों की आहुति दे रहे थे और देश की स्वतन्त्रता के लिए भी। समाज के सामने आज वह सच आना चाहिए। आज चर्चा होनी चाहिए, कौन थे वो लोग जिन्होंने एक बड़े वर्ग को दलित कहकर वेद और वैदिक शिक्षा से दूर कर दिया था? कौन थे वो लोग जिन्होंने महिला के हाथ से शिक्षा छीन ली थी? कौन थे वो लोग जिनके सामने गरीब छुआछूत के शिकार लोगों का धर्मांतरण किया जा रहा था और वह मौन थे?

तब यही ऋषि दयानन्द की सेना थी, जो लड़कियों के लिए गुरुकुल खोल रही थी। उन्हें शिक्षा का अधिकार दिला रही थी। समाज में फैले पाखंड से लोगों को जागरूक कर रही थी। पाखंड खंडनी पताका फहरा रही थी।

आज दुनिया का कोई इतिहास ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज का इतिहास कैसे भुला सकता है? कैसे मिटा सकता है १९ वीं सदी में गाँव-गाँव शहर में बनी आर्य संस्थाओं, आर्यसमाज मंदिरों के इतिहास को? ये अमिट इतिहास है जो ना भुलाया जा सकता, ना मिटाया जा सकता। क्योंकि जब-जब राष्ट्र में अन्धविश्वास बढेगा वो दयानन्द याद आएगा, जब-जब नारी की महत्ता की बात होगी वो दयानन्द याद आएगा। जब-जब पाखंड बढेगा तब-तब वो दयानन्द याद आएगा। जब राष्ट्र की एकता, हिंदी भाषा की महत्ता, वेदों के पढ़ने और सुनने के अधिकार की बात आएगी, तब-तब वो दयानन्द याद आएगा। उस महर्षि दयानन्द को ना तो भुलाया जा सकता और ना मिटाया जा सकता। क्योंकि इस देश में पग-पग पर वह महर्षि दयानन्द याद आएगा। अगर किसी को यह अतिश्योक्ति लगे तो उनके लिए सवाल है और सवाल यह कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन में कितनी धार्मिक या सामाजिक संस्थायें थीं जिससे जुड़े लोग राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए, स्वदेशी और स्वराज्य के लिए सीने पर गोली, गले में फाँसी और छाती पर खंजर के वार सह रहे थे ? ❑❑

निर्भीकता

एक दिन बरेली में महर्षि दयानन्द जी को व्याख्यान देना था, उससे पहले दिन वे ईसाई मत का खण्डन कर चुके थे। उनसे कहा गया कि आज आप ईसाई मत का खण्डन न करें, क्योंकि इससे वहाँ के उच्च राज्य कर्मचारी अप्रसन्न होंगे। व्याख्यान में कमिश्नर आदि उपस्थित थे। स्वामी जी ने गरजकर कहा–'लोग कहते हैं कि असत्य का खण्डन न कीजिए, इससे कमिश्नर अप्रसन्न होगा, कलैक्टर नाराज होगा, परन्तु चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।'

गहरा षड्यन्त्र

लेखक : डॉ० सोमदेव शास्त्री (मुम्बई)

पूरे देश में आजादी का अमृत महोत्सव उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है, घर-घर तिरंगा ध्वज फहराया जा रहा है, ग्राम, नगर और महानगरों में पर्वतों की चोटियों और मैदानों में भारतीय ध्वज तिरंगे को लेकर आबाल, वृद्ध नर-नारी भारत माता की जय, वंदे मातरम्, के उद्घोषों से आजादी की सुरक्षा की भावना को जगा रहे हैं। देश आजादी के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले स्वतन्त्रता सेनानियों को स्मरण कर रहा है, सभी रजानीतिक पार्टियां और उनसे जुड़े हुए नेता अपने को देशभक्त दिखलाने की प्रतिस्पर्धा में लगे हुए हैं, किन्तु स्वतन्त्रता का सर्वप्रथम उद्घोष करने वाले महर्षि दयानन्द का उल्लेख ना करके कृतघ्नता का पाप कर रहे हैं।

सन् १८५७ का प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन अंगेजों ने बड़ी क्रूरता से कुचल दिया। सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या बहुत कम करके अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई। शासन ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथों में ले लिया तथा महारानी विक्टोरिया ने १८५८ में घोषणा की कि मैं भारत की खुशहाली चाहती हूँ । महारानी विक्टोरिया की घोषण पर कटाक्ष करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा–"कोई कितना ही (लुभावनी घोषणा) करे, किन्तु स्वदेशी राज्य (स्वराज) सर्वोपरि अर्थात् सबसे उत्तम होता है।"

अंग्रेज अधिकारी के पूछने पर ऋषि दयानन्द ने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया–"मैं तो परमेश्वर से प्रतिदिन प्रार्थना करता हूँ कि परमेश्वर वह दिन शीघ्र आवे, जिस दिन विदेशियों का राज्य हमेशा के लिए के लिए समाप्त हो जाए और भारत में भारतीयों का राज्य हो जाए।" यह वह समय था जब अंग्रेजी पठित व्यक्तियों में यह हीन भावना पैदा हो रही थी।

ऋषि-मुनि कुछ नहीं जानते थे अंग्रेजों के कारण भारत की उन्नति हो रही है, इस भ्रम को दूर करते हुए ऋषि ने घोषणा की थी–"भारत ही एक ऐसा देश है कि दुनिया में सारी विद्या इस भारत से ही फैली (एतत् देशः) है। इसकी प्रशंसा विदेशों में विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों में की है। इसके सदृश्य भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है। यही देश पारसमणि पत्थर है जिसे विदेशी (लोहरूपी देश), छूकर सोने के (अर्थात् वैभवशाली) हो जाते हैं।" ब्रह्म-समाज और प्रार्थना-समाज की आलोचना करते हुए ऋषि ने लिखा है कि यह लोग ऋषि मुनियों की प्रशंसा ना करके भरपेट निन्दा करते हैं।

भारतयों को याद दिलाया देखो ! यह अंग्रेज अपने देशी (भारत के बने हुए) जूते को ऑफिस में नहीं जाने देते हैं, इतने दूर (अपने देश) से आकर भी अपने वस्त्र और जूतों को इन्होंने नहीं छोड़ा। इस प्रकार भारतीय अस्मिता को जगाने का आजीवन प्रयास ऋषि दयानन्द ने किया।

महर्षि दयानन्द की प्रेरणा से आर्यसमाज लाहौर ने सन् १८७९ में देशी वस्त्र (खादी) ओर देशी खांड की दुकान खोली और स्वदेशी वस्त्रों को पहनने की प्रतिज्ञा आर्यसमाज के सदस्यों ने की। मारवाड़ राज्य का प्रत्येक कर्मचारी पाली (राजस्थान) की बनी खादी को ही पहनेंगे, यह आदेश जोधपुर नरेश ने ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से दिया था। सन् १८८२ में पंजाब में हंटर कमीशन आया, तब ऋषि

दयानन्द ने आर्यसमाज के अधिकारियों से कहा था कि हंटर कमीशन के आगे यह माँग रखना कोर्ट और तहसील की भाषा हिन्दी हो।

महर्षि दयानन्द ने अपने शिष्य तथा आर्य समाज मुम्बई के सदस्य श्याम जी कृष्ण वर्मा को लन्दन जाने की तथा देश की आजादी के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा दी। श्याम जी कृष्ण वर्मा ने लन्दन में "इण्डिया हाउस" की स्थापना करके उस स्थान को आजादी का प्रेरणा स्थल बना दिया। जहाँ दादाभाई नौरोजी, भाई परमानन्द, महात्मा गांधी, वीर सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल धींगरा, मैडम कामा आदि देशभक्त क्रान्तिकारी रहकर देश की आजादी के लिए प्रयत्न करते रहे।

"आर्यसमाज मेरी माँ और ऋषि दयानन्द मेरे धार्मिक पिता हैं" की घोषण करने वाले लाला लाजपतराय जो १९२० में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के सभापति थे, जिन्होंने साइमन कमीशन का विरोध किया था, सरदार भगतसिंह, ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द आदि सभी को देश की आजादी के लिए अपने प्राणों की आहुति देने की प्रेरणा देने वाले महर्षि दयानन्द का नाम न लेने का पाप कथित राजनेता कर रहे हैं।

इतिहास इन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा। दलित उद्धार हो, स्त्री शिक्षा हो, तथाकथित जाति प्रथा पर कुठाराघात हो, विशाल हिन्दू समाज पर होने वाले विधर्मियों (ईसाइयों और मुसलमानों) के आरोप हों, इन सब की चट्टान बनकर इस विशाल समाज और राष्ट्र की रक्षा की, उनका नाम न लेना, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त न करना बहुत बड़ा पाप है। क्या यह सुनियोजित षड्यन्त्र तो नहीं है? आर्यसमाज के नेता अधिकारी, पदाधिकारी, विद्वान्, संन्यासी कुम्भकरण की नींद में तो नहीं सो रहे हैं? कोई इनको स्व-कर्तव्य बोध कराएगा या स्वार्थ के वशीभूत सब मौन धारण किए रहेंगे।

महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि आर्ष ग्रन्थों को पढ़ना समुद्र में गोता लगाना और बहुमूल्य रत्नों को प्राप्त करना है। आज योजनाबद्ध तरीके से आर्ष पाठ विधि के गुरुकुलों को समाप्त करने का षड्यन्त्र हो रहा है। आज प्रान्तीय सरकारें अपने प्रान्त के शिक्षा बोर्ड बनाकर छात्रों एवं शिक्षकों को आर्थिक लाभ का प्रलोभन देकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, दर्शन, वेदादि के पारम्परिक पठन-पाठन की प्रक्रिया को समाप्त किया जा रहा है, यदि ऐसा ही कुछ समय तक होता रहा तो गुरुकुल, आर्ष पाठ विधि, वैदिक सिद्धांत आदि का नाम मात्र शेष रह जाएगा। इनके सुरक्षित न रहने पर विशाल हिन्दू समाज भी सुरक्षित नहीं रहेगा क्योंकि तथाकथित हिन्दू जाति और राष्ट्रीय स्वाभिमान की सुरक्षा कवच तो आर्यसमाज वेदादि आर्ष ग्रन्थ तथा इन को स्पष्ट करने वाले ऋषि दयानन्द हैं ।

इनको योजनाबद्ध तरीके से समाप्त करने के का गहरा षड्यन्त्र करना बन्द कर दें अन्यथा मानव समाज सुरक्षित नहीं रहेगा, जैसा कि लिखा है– **"धर्म एव हतो हन्ति।"** ❑❑

विनम्र बनो !

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मस्ततः सुखम् ॥

विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से पात्रता-योग्यता प्राप्त होती है, योग्यता से धन मिलता है, धन से धर्म-कार्यों का अनुष्ठान होता है और सुख की प्राप्ति होती है । यदि आप भी सुख, शान्ति और आनन्द चाहते हैं तो विनम्र बनो ।

नासदीय सूक्त और आधुनिक विज्ञान–६

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १२९वें, 'नासदीय' सूक्त के पांच मन्त्रों में हमने सृष्टि के प्रथम क्षणों के विषय में बहुत कुछ जाना, परन्तु आगे के और अन्तिम दो मन्त्र जैसे इस ज्ञान पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर देते हैं और सर्वत्र रहस्य उत्पन्न कर देते हैं। इस रस का भी आस्वादन करते हैं.....

नासदीय सूक्त का षष्ठ मन्त्र इस प्रकार है–

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत् आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥

ऋग्वेदः १०।१२९।६॥

पुनः, मैं प्रथमतया स्वामी ब्रह्ममुनि जी के अर्थ दे रही हूँ–(कः अद्धा वेदा) कौन सृष्टि को तत्त्वतः जानता है और (कः इह प्रवोचत्) कौन इस विषय में अन्यों को बता ही सकता है (क्योंकि उसे स्वयं ही नहीं ज्ञात है) कि (कुतः इयं विसृष्टिः) किस निमित्त कारण से यह विविध सृष्टि उत्पन्न हुई और (कुतः आजाता) किस उपादान कारण से उत्पन्न हुई? (अस्य विसर्जनेन अर्वाक् देवाः) इस सृष्टि के बाद विद्वज्जन आए, (अथ) इसलिए (यतः आबभूव कः वेद) यह कहाँ से उत्पन्न हुई, इसे कौन जानता है (अर्थात् वे ही नहीं जान सकते, तो और कौन जान सकता है)?

इस मन्त्र ने तो जैसे चौथे मन्त्र में कही बात को उलट ही दिया ! चौथे मन्त्र में हमने जाना था कि कैसे ऋषि लोग अपने शुद्ध अन्तःकरण में सृष्टि के प्रारम्भ को कुछ-कुछ देख पाते हैं। अभी तक के मन्त्रों में भी हमने सृष्टि के निमित्त व उपादान कारणों को जाना। तब फिर यहाँ सबको नकारा क्यों जा रहा है?

वस्तुतः, इस अर्थ को भी थोड़ा खोल कर समझना आवश्यक है। इसलिए इसको पुनः समझते हैं। पहले तो हम पाते हैं कि 'देवाः' के यहाँ दो अर्थ सम्भव हैं–प्राकृतिक शक्तियां और क्रान्तदर्शी कविजन–जो दो अर्थ क्रमशः आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ हैं। ये अर्थ इस प्रकार हैं–

कोई भी न्याय आदि की युक्तियों द्वारा सृष्टि के प्रथम क्षणों को नहीं जान सकता। इसी कारण से, वैज्ञानिक भी एक सीमा तक ही इस विषय को टटोल पाये हैं, कुछ तर्क से और अधिकतर ऊहा से। इसी प्रकार के तर्कों से सांख्यदर्शन में भी हम मूल उपादान कारण प्रकृति के परिणामों को समझते हैं, परन्तु ये भी वे परिणाम हैं जो कि आज भी विद्यमान हैं। सृष्टि के प्रथम क्षणों का विवरण वहाँ नहीं है। इन प्राकृतिक परिणामों के विद्यमान होने से ही इनको हम तर्क से प्राप्त कर सकते हैं कि कौन प्रथम आया, कौन पश्चात्। परन्तु यहाँ तो सृष्टि के प्रारम्भिक क्षणों की चर्चा हो रही है। ये तो केवल कवियों की विशेष प्रतीति से ही ज्ञात हो सकते हैं, जैसा कि हमने मन्त्र ४ में जाना था। जब उन कवियों को ही यह विषय इतने विशेष प्रकार (ध्यान आदि) से ज्ञात होता है, तो यह कैसे सम्भव है कि वे दूसरे को उसका उपदेश कर सकें? वस्तुतः, कुछ-कुछ तो उपदेश किया जा सकता है, जैसा कि इस सूक्त में वेद कर ही रहा है। यह भाग हमने पाया कि वैज्ञानिकों

ने भी ऊहा से ढूंढ निकाला है। तथापि यह ज्ञान बहुत अधूरा है। सृष्ट्ययारम्भ की परिस्थितियां इतनी विशेष थीं कि, मनुष्य तो क्या, जीवात्मा भी उसका पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सकता...

मन्त्र इस कठिनता के दो कारण देता है–१. इस सृष्टि के प्रारम्भिक क्षणों में ('देवाः' का आधिभौतिक अर्थ–) महाभूतादि और प्राकृतिक बल उत्पन्न ही नहीं हुए थे; यदि होते, तो हम तर्क से वह स्थिति जान लेते। प्रकृति का स्वरूप ही भिन्न होने से, कौन कह सकता है कि उपादान कारण क्या था, कैसा था? यह तथ्य पांचवें मन्त्र में निरूपित था, यहाँ बताया जा रहा है कि उसके कारण उस प्रारम्भिक अवस्था को जानना असम्भवप्राय ही है। २. जानने वाले यदि अपने सामने किसी वस्तु की उत्पत्ति को देखें, तो वे उसको भली-भांति समझ भी सकते हैं। परन्तु मनुष्य का जन्म तो सर्ग में बहुत बाद में होता है, जबकि बाकी सब तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं–पेड़-पौधे उत्पन्न हो जाते हैं, पशु-पक्षी उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जब प्रकृति मनुष्य जैसे विशेष जीव के लिए सिद्ध हो जाती है, तब ही वह जन्म लेता है। ऐसी स्थिति में कैसे ('देवाः' का आध्यात्मिक अर्थ–) विद्वज्जन भी इस गुत्थी को पूरी तरह खोल सकते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई?

इस मन्त्र में एक और अंश ध्यान देने योग्य है। मन्त्र कहता है–कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः– जिसके अर्थ क्रमशः उपादान व निमित्त कारण लिए गए हैं। यहाँ 'विसृष्टिः' पद का 'विविध प्रकार की सृष्टि' अर्थ हैं परन्तु यह विविधता प्रधानतया प्राणिसृष्टि को इंगित करती है। भूतों की विविधता उपादान कारण–कुतः आजाता–के अन्तर्गत आ जाती है। इस प्रकार विभक्त करने से ही 'निमित्त कारण' के भी सही अर्थ बनते हैं, क्योंकि विविध प्रकार के भूत बनने में जो निमित्त कारण है, वह जीवात्मा के कर्म ही हैं, जैसा कि सांख्यदर्शन ने कहा है–**"कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ॥ सांख्यदर्शनम् ६।४१॥"** –कर्म की विचित्रताओं से सृष्टि में वैचित्र्य आता है। इसी की गूंज इस सूत्र में भी प्राप्त होती है–**"न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ॥ सांख्यदर्शनम् ५।२०॥"** –धर्म के कारण ही, अर्थात् विविध कर्मों के विविध फलों को क्रियान्वित करने के लिए प्रकृति के कार्यों में वैचित्र्य होता है। यदि मन्त्र के दोनों भागों में भौतिक सृष्टि का ही अर्थ लिया जाए, तो पुनरुक्ति दोष की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पिछले दो मन्त्रों में जो मैंने प्राणिसृष्टि के आध्यात्मिक अर्थ लिए थे, वे सही थे। और इस प्रकार यह मन्त्र भौतिक व प्राणी सृष्टि को अन्ततः जोंड़ता है।

इस प्रकार अर्थ को ग्रहण करने का एक और प्रभाव होता है–**"अथ कः वेद यतः आबभूव"** के अर्थ बनते हैं– इसलिए कौन जानता है कि यह भौतिक व प्राणी सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई? भौतिक सृष्टि में तो प्रारम्भिक अवस्था के अज्ञेय होने से यह कहा गया, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, परन्तु प्राणी सृष्टि के सन्दर्भ में कर्मों की अज्ञेयता, उनसे प्रारब्ध की उत्पत्ति की अज्ञेयता के कारण भी ऐसा कहा गया है। योगदर्शन के सूत्र–**"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ योगदर्शनम् २।१३॥"** के भाष्य में व्यास ने इस अज्ञेयता का निदर्शन दिया है। वहाँ बताया गया कि एक कर्म के अनेक विपाक हो सकते हैं, और अनेक कर्मों का एक। इसलिए परमात्मा ही जानता है कि किस कर्म का क्या फल होगा, उसको भोगने के लिए जीव के लिए किस प्रकार की सृष्टि सृजित करनी पड़ेगी। जीवात्मा की सीमित ग्रहण शक्ति में यह ज्ञान समा ही नहीं सकता ! इसीलिए परमात्मा परमात्मा है और जीवात्मा जीवात्मा !

अब अन्तिम मन्त्र को देखते हैं–

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ऋग्वेदः १०।१२९।७॥

इस मन्त्र का प्रचलित अर्थ इस प्रकार है–यह सृष्टि जहाँ से उत्पन्न हुई है, क्या वह उसे धारण भी कर रखे कि नहीं (अर्थात् कहीं उसने छोड़ तो नहीं दिया है, या कभी धारण ही नहीं किया था)? जो इसका अध्यक्ष सूक्ष्मतर आकाश में स्थित है, ओ प्रिय शिष्य ! क्या वह स्वयं इस सृष्टि को समझता भी है कि नहीं !

मैंने प्रतिष्ठित आचार्यों को भी इस मन्त्र को इस प्रकार पढ़ाते हुए देखा है। क्या यह महर्षि दयानन्द की शिक्षा के पूर्णतया प्रतिकूल नहीं है? –क्या परमात्मा सृष्टि को छोड़कर बैठा है? क्या वह स्वयं नहीं जानता यह सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न हुई और किस प्रकार चल रही है ? जो मन्त्र का ऐसा अर्थ करते हैं, उनको धिक्कार है !

स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने इसका भाष्य इस प्रकार किया है–(**इयं विसृष्टिः**) यह विविध सृष्टि (**यतः आबभूव**) जिस उपादान कारण से उत्पन्न हुई है, (**अस्य यः अध्यक्षः**) उसका जो अध्यक्ष है और जो (**परमे व्योमन्**) महान् आकाश में विद्यमान है, (**अङ्ग**) हे जिज्ञासु ! (**सः यदि व दधे**) वह यदि चाहे तो सृष्टिरूप में स्थिर रखे, (यदि वा न) और यदि न चाहे तो न धारण करे (प्रलय में), (यदि वेद) यदि उपादान कारण को जानते हुए उसे परिणत करे, और (यदि वा न वेद) यदि न जानते हुए उसे परिणत न करे (प्रलय में), दोनों ही प्रकार से वह उपादान कारण परमात्मा के अधीन है।

यह अर्थ अधिक सही है, परन्तु इसमें भी कमियां हैं। परमात्मा तो हर स्थिति में प्रकृति को धारण करता है व उसकी अवस्था को जानता है; नहीं धारण करता है अथवा नहीं जानता है–ये अर्थ सम्भव नहीं हैं। तथापि भाष्यकार ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के अर्थ किंचित् भाग में लिए।

अब देखते हैं महर्षि दयानन्द के वचन। सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में वे कहते हैं–हे अङ्ग = मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय करता है, जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में सब जगत् उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्ता मत माना ।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'सृष्टिविद्याविषय' नामक अध्याय में वे कहते हैं–(**इयं विसृष्टिर्यत आबभूव**) **यतः परमेश्वरादियं प्रत्यक्षा विसृष्टिर्विविधा सृष्टिराबभूवोत्पन्नासीदस्ति, (यदि वा दधे) तां स एव दधे धारयति रचयति, (यदि वा न) यदि वा विनाशयति, यदि वा न रचयति। (यो अस्याध्यक्षः) योऽस्य सर्वस्याध्यक्षः स्वामी (परमे व्योमन्) तस्मिन् परमाकाशात्मनि परमे प्रकृष्टे व्योमवद्व्यापके परमेश्वर एवेदानीमपि सर्वा सृष्टिर्वर्तते। प्रलयावसरे सर्वस्यादिकारणे परब्रह्मसामर्थ्ये प्रलीना च भवति। (सोऽध्यक्षः) स सर्वाध्यक्षः परमेश्वरोऽस्ति। (अङ्ग वेद) हे अङ्ग मित्र जीव ! (यदि वेद) तं य वेद स विद्वान् परमानन्दमाप्नोति। (यदि न वेद) यदि तं सर्वेषां मनुष्याणां परमिष्टं सच्चिदानन्दादिलक्षणं नित्यं कश्चिन्नैव वेद, (वा) निश्चयार्थे, सः परमं सुखमपि नाप्नोति।** –अर्थात् जिस परमेश्वर (निमित्त कारण) से यह प्रत्यक्ष विविध सृष्टि उत्पन्न हुई है, उसे उस (परमात्मा) ने ही धारण किया है और वही उसका विनाश करता है; या वही इसे (सर्गावस्था में) रचता है, और वही (प्रलयकाल में) नहीं रचता । जो इस सृष्टि का स्वामी है, उस

परम सूक्ष्म, आकाश के समान व्यापक परमेश्वर में ही यह सृष्टि वर्तती है। और प्रलय के समय में सब के आदिकारण परब्रह्म के सामर्थ्य (मूल प्रकृति, उपादान कारण) में प्रलीन हो जाती है। हे (परमात्मा के) सखा जीव ! यदि कोई विद्वान् उसे जानेगा तो परम सुख को प्राप्त करेगा; यदि नहीं, तो निश्चय ही परम सुख भी नहीं पायेगा।

स्पष्टतः, इस भाष्य में अनेक विशेषताएं हैं। प्रथम तो, महर्षि ने 'वा' का अर्थ प्रश्नचिह्न न मानकर, निश्चयार्थक माना है। इसके कारण मन्त्र से सभी अनिश्चितताएं निकल गईं, जिससे कि मूर्खतापूर्ण प्रश्न बन रहे थे। फिर 'दधे' का अर्थ उन्होंने धारण ही नहीं, अपितु रचन भी किया, जिससे कि 'न दधे' का अर्थ प्रलयावस्था में विनाश व रचन न करने का अर्थ निकला। इस प्रकार, महर्षि ने इस मन्त्र में प्रलय का अर्थ भी दर्शा दिया, जो कि अभी तक इस सूक्त में कहीं नहीं आया था। प्रलयावस्था का यह अर्थ अन्य भाष्यकारों की मति में न आ सका क्योंकि इस अर्थीकरण में ऋषित्व की आवश्यकता है।

फिर, मन्त्र के दूसरे चरण में 'सः' का सम्बन्ध 'वेद' क्रिया से न लेकर, उन्होंने 'अध्यक्षः' से पुनः जोड़ा। इससे 'परम व्योम' रूपी परमेश्वर अर्थ निकला, न कि 'सम्भवतः वह इस सृष्टि को जानता है, सम्भवतः नहीं' का कुत्सित अर्थ। मन्त्र के अगले चरण में 'सः' के विभक्ति-व्यत्यय से वह 'तम् = उसको' बन जाता है।

'वेद यदि वा न वेद' के तो उन्होंने कुछ विलक्षण ही अर्थ कर दिए–उस परमात्मा को यदि तूने जान लिया, हे मनुष्य ! तो तू तर जायेगा, नहीं तो यही भवसागर में फंसा रहेगा ! इस प्रकार मनुष्यों के जीवन के दो लक्षण–अभ्युदय व निःश्रेयस – उन्होंने मन्त्र में दर्शाए ।

आधुनिक विज्ञान ने जाना है कि आज ब्रह्माण्ड बढ़ती गति से फैल रहा है। इसको देखते हुए, ऊहा की जाती है कि ब्रह्माण्ड के तीन अन्त सम्भव हैं–१. फैलाव की गति एक सीमा तक बढ़कर, कम होना चालू हो जाएगी। फिर, गति के हलके होते हुए, एक दिन ऐसा आएगा कि वह गति शून्य हो जाएगी, ब्रह्माण्ड वहीं थम जाएगा और उसी अवस्था में बना रहेगा। २. फैलाव की गति बढ़ती चली जाएगी और ब्रह्माण्ड बढ़ता चला जाएगा। तारों का प्रकाश कम होकर समाप्त हो जाएगा और सर्वत्र तापमान न्यून हो जाएगा। ३. फैलाव की गति पहले बढ़ेगी, फिर शून्य होकर उलट जाएगा। उलटने पर वह छोटा होते-होते पुनः शून्यकार हो जाएगा। और फिर से विस्फोटित होकर नया सर्ग प्रारम्भ होगा। यह तीसरा विकल्प कुछ-कुछ वैदिक मत से मिलता है और इसमें प्रलय जैसी कुछ स्थिति और पुनः-पुनः सर्गारम्भ पाया जाता है।

इस प्रकार, षष्ठ मन्त्र में कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनको उत्तर की अपेक्षा नहीं है (rhetorical questions), तथापि उन प्रश्नों में भी बहुत ज्ञान निहित है, क्योंकि उत्तर उन्हीं में समाया हुआ है। परन्तु सप्तम मन्त्र में प्रश्न हैं ही नहीं, केवल महत्त्वपूर्ण निहित अर्थ हैं। इस लेख में इन अंशों का अनावरण करने की चेष्टा की गई है, जिससे यह ज्ञात होता है कि षष्ठ मन्त्र चतुर्थ मन्त्र को नकार नहीं रहा है, अपितु विशेषित कर रहा है, और सप्तम मन्त्र बहुत गूढ़ तथ्यों को अपने अन्दर समाए हुए हैं। पुनः, षष्ठ वेदमन्त्र में, पिछले मन्त्र से अनुवृत्त, आधिदैविक व आध्यात्मिक अर्थ को हमने एक साथ पाया, जिससे पूर्व के दो मन्त्रों में इन दो अलग-अलग अर्थों की पुष्टि हो जाती है, अर्थात् भौतिक सृष्टि व प्राणी सृष्टि का अर्थ इन तीनों मन्त्रों में साथ-साथ चल रहा है, यह सिद्ध हो जाता है। ❑❑

आर्यसमाज की दो भुजाएं हैं–एक वेद और दूसरी राष्ट्र

–पण्डित क्षितीश वेदालंकार

मैं भी मानता हूँ कि ऋषि दयानन्द यदि शरीर है तो वेद उसकी आत्मा है। महर्षि जैमिनी के पश्चात् ऋषि दयानन्द जैसा वेदोद्धारक पैदा नहीं हुआ। इसलिए जिस तरह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम 'धनुर्धारी' के नाम से विख्यात हैं, और श्री कृष्ण 'बंसीवाले' या 'मुरलीधर' के नाम से एवं गुरु गोविन्दसिंह 'कलगी वाले' के नाम से, इसी तरह से कुछ लोग ऋषि दयानन्द को भी 'वेदां वाले सन्त, स्वामी दिगन्त, जग को जगा दिया तूने' कहते हुए मस्त होकर गाते हैं। 'वेदां वाले सन्त' कहने में वही एकांगिता है जो श्रीकृष्ण को केवल 'बंसीवाला' कहने में। क्या श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्रधारी रूप की किसी भी रूप में अवहेलना की जा सकती है? पर भक्त सम्प्रदाय ने कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र को भुला कर वृन्दावन को रस और रास की लीलास्थली बना दिया और श्रीकृष्ण को वहीं तक सीमित कर दिया। इसी तरह केवल वेद वेद का नारा लगाने वालों ने भी ऋषि दयानन्द के राष्ट्रीय चेतना वाले स्वरूप को ओझल कर दिया। तभी मुझे यह नारा लगाना पड़ा कि आर्यसमाज की दो भुजाएं हैं–एक वेद और दूसरी राष्ट्र। जो केवल एक भुजा की बात करता है वह आर्यसमाज को विकलांग बना देना चाहता है।

अंग्रेज के पिट्ठुओं ने और ब्रिटिश सेवा से ऐश्वर्य सम्पन्न बने लोगों ने ही इस बात पर सबसे अधिक जोर दिया कि आर्यसमाज केवल वेद को मानने वाली एक धार्मिक संस्था है, उसका राष्ट्र या राजनीति से कोई वास्ता नहीं। जितना-जितना उसके धार्मिक स्वरूप पर जोर दिया जाता है, उतना-उतना मेरे मन में आक्रोश बढ़ता जाता है, क्योंकि राष्ट्रीयता से विहीन धर्म केवल एक सम्प्रदाय बनकर रह जाता है–जिस तरह ईसाईयत या इस्लाम। इसीलिए ईसाईयत या इस्लाम में राष्ट्रवाद का कोई स्थान नहीं है, जबकि वैदिक धर्म में राष्ट्र की उपासना भी धर्म का अंग है, क्योंकि राष्ट्रचेतना ही अन्त में विश्वचेतना का माध्यम बनती है। जिस तरह मैं आत्मचेतना को राष्ट्रचेतना का मूल मानता हूँ, उसी तरह राष्ट्रचेतना को विश्वचेतना का मूल मानता हूँ। इसीलिए मैं 'जयहिन्द' की सीढ़ी के बिना 'जयजगत्' के नारे को हवाई और खोखला मानता हूँ। पर आजकल के भक्तों और धार्मिक लोगों को राष्ट्रीय शान्ति की उतनी चिन्ता नहीं, जितनी विश्व शान्ति की है। इसीलिए जहाँ देखो वहाँ विश्वशान्ति के नाम पर यज्ञों, कीर्तनों और पूजापाठ की भरमार है। जो अपने सिर पर छत का इन्तजाम नहीं कर सकते, वे 'आकाश बांधू के कुलाबे मिलाते रहे, इसमें पलायनवादी मानसिक विलास और भक्तजनों के आर्थिक शोषण की पौराणिक परम्परा नहीं तो और क्या है? एक खास बात यह भी ध्यान देने की है कि आर्यसमाज के स्वनामधन्य नेताओं ने जितना राष्ट्रीयता विहीन धार्मिक संस्थावाद पर जोर दिया, आर्य जनता ने उतना नहीं। आर्य जनता सदा राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत रही। और तो और ये आर्यनेता अपने पुत्रों को भी इस राष्ट्रचेतना से नहीं बचा सके। स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, महाशय कृष्ण, महात्मा आनन्द स्वामी–चारों आर्य नेताओं के पुत्र क्रान्तिकारी बने।

मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिस तरह ऋषि दयानन्द ने वेदमन्त्रों के अर्थ किए हैं और सब प्रकार

(शेष पृष्ठ २७ पर)

भारतीय शिक्षा बोर्ड

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

केंद्र सरकार ने आजादी के ७५ साल पूरे होने पर भारतीय शिक्षा बोर्ड का गठन करके उसके संचालन का जिम्मा स्वामी रामदेव के पतंजलि योगपीठ ट्रस्ट को सौंपा है। जब पूरा देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है, ऐसे में केंद्र सरकार ने भारतीय शिक्षा बोर्ड का गठन करके एक और ऐतिहासिक कार्य किया है। वर्ष २०१५ में स्वामी रामदेव जी ने अपने हरिद्वार स्थित वैदिक शिक्षा अनुसंधान संस्थान के जरिए एक नया स्कूली शिक्षा बोर्ड शुरू करने का विचार प्रस्तुत किया था। इस स्कूली शिक्षा बोर्ड में "महर्षि दयानन्द की पुरातन शिक्षा" और आधुनिक शिक्षा का मिश्रण करके भारतीय शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जानी थी। हालांकि शिक्षा मंत्रालय ने वर्ष २०१६ में यह प्रस्ताव खारिज कर दिया था। किन्तु समय गुजरा और स्वामी जी का निरंतर प्रयास रंग लाया। निस्संदेह भारतीय शिक्षा बोर्ड भविष्य के भारत का निर्माण बिंदु साबित होगा।

हालाँकि हमारे यहाँ पहले से ही सी० बी० एस०ई०, आई० सी० एस० ई०, आई० बी०, स्टेट बोर्ड हैं। परन्तु फिर लंबे समय से 'वैदिक पाठशाला' और वैदिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारतीय शिक्षा बोर्ड माँग की जा रही थी। स्वामी रामदेव जी ने भी इस उपलब्धि पर कहा है कि १८३५ में मैकाले जो पाप करके गया था उसको साफ करने का ये बोर्ड काम करेगा।

शिक्षा व्यवस्था किसी भी देश और समाज की दिशा एवं दशा तय करती है। और धूर्त मैकाले ने सर्वप्रथम हमारी गुरुकुल शिक्षा पद्धति पर प्रहार किया।

उस दौरान की अगर बात करें तो अठारहवीं सदी में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी वितीय रूप से संक्रमण काल से गुजर रही थी और ये संकट उसे दिवालियेपन की कगार पर पहुँचा सकता था। कम्पनी का काम करने के लिए ब्रिटेन के अधिकारी और कर्मचारी अब उसे महंगे पड़ने लगे थे। इसी कालखंड में गवर्नर जनरल विलियम बेंटिक भारत आया जिसने लागत घटाने के उद्देश्य से अब प्रसाशन में भारतीय लोगों के प्रवेश के लिए चार्टर एक्ट में एक प्रावधान जुड़वाया कि सरकारी नौकरी में धर्म जाति या मूल का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा।

बस यहाँ से मैकाले का भारत में आने का रास्ता खुला। अब अंग्रेजों के सामने चुनौती थी कि वह कैसे भारतीयों को उस भाषा में पारंगत करें जिससे कि ये अंग्रेजों के पढ़े-लिखे हिंदुस्थानी गुलाम की तरह कार्य कर सकें। इस कार्य को आगे बढाया जनरल कमेटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन के अध्यक्ष थोमस बैबिंगटन मैकाले ने। मैकाले की सोच स्पष्ट थी। उसने पूरी तरह से भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समाप्त करने और अंग्रेजी (जिसे हम मैकाले शिक्षा व्यवस्था भी कहते हैं) शिक्षा व्यवस्था को लागू करने का प्रारूप तैयार किया था।

मैकाले के शब्दों में–"हमें एक हिन्दुस्थानियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना है जो हम अंग्रेज शासकों एवं उन करोड़ों भारतीयों के बीच दुभाषिये का काम कर सके, जिन पर हम शासन करते हैं। हमें हिन्दुस्थानियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना है, जिनका रंग और रक्त भले ही भारतीय

हों लेकिन वह अपनी अभिरूचि, विचार, नैतिकता और बौद्धिकता में अंग्रेज हों" जिनकी भाषा अंग्रेजी हो और धर्म पिता मैकाले।

इस पद्दति को मैकाले ने सुन्दर प्रबंधन के साथ लागू किया। इससे अंग्रेजी के गुलामों की संख्या बढने लगी और जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते थे वो अपने आप को हीन भावना से देखने लगे। क्योंकि उन्हें अपने भाइयों के सरकारी नौकरियों के ठाट दीखते थे जिन्होंने अंग्रेजी की गुलामी स्वीकार कर ली थी। इस प्रक्रिया में हमारी भारतीय भाषाएँ कमजोर होती गयी और हिन्दुस्थान में हिंदी विरोध का स्वर उठने लगा। अंग्रेजी का मतलब सभ्य होना, उन्नत होना माना जाने लगा। नतीजा भारतीय भाषाओं का विकास रुक गया। संस्कृत एवं हिंदी समेत तमाम भारतीय भाषाओं को पीछे छोड़ते हुए अंग्रेजी भाषा आगे बढ़ने लगी। "जोनी जोनी यस पापा" बच्चों को पढाया जाने लगा। फिर आया उपभोक्तावाद का दौर और मिश्नरी स्कूलों का दौर तथा अंग्रेजी भाषा का जादू चल पड़ा।

कहने का अर्थ ये है मैकाले की शिक्षा पद्धति लागू होते ही स्कूली बच्चों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों, इतिहास और सभ्यता से अलग कर देने का काम शुरू हुआ। लड़कियों का लज्जा का आवरण तोड़ने के लिए स्कूलों में उन्हें स्कर्ट पहनाई जाने लगी। साथ ही स्कूलों से वैदिक शिक्षा, उपनिषदों, गीता, रामायण और हिंदू धर्म ग्रंथों को दूर कर दिया गया।

परिणाम ये हुआ कि आज हिन्दू बच्चों को अपने सनातन धर्म का जो ज्ञान है वो टी०वी० सीरियल से है वरना ना स्कूलों और उनके घरों में वेद उपनिषद् तक मौजूद नहीं है। अब टी०वी० सीरियल वाले अपने एजंडे के तहत हमारे महापुरुषों का चरित्र नष्ट करने लगे, जहाँ कृष्ण के साथ रुक्मणी का नाम था, वहाँ राधा दिखाई गयी। शिव जैसे परम तपस्वी को भांग पीते हुए दिखाया जा रहा है। वेदों के नाम पर अफवाह फैलाई जाने लगी कि वेदों में गोमाँस खाना लिखा है। धीरे-धीरे शिक्षा वामपंथ से प्रभावित होकर सनातन धर्म की विरोधी हो चली। हमारा इतिहास बिगाड़ा गया। भूगोल बिगाड़ा गया। हमारे ऋषि-महर्षियों के द्वारा किये गये अविष्कार विदेशी लोगों के नाम पर जोड़ दिए गये। ताकि हमारे बच्चे अपने धर्म संस्कृति और सभ्यता को हीन भावना से देखने लगे।

आज भारतीय शिक्षा बोर्ड एक बड़ा कदम इसलिए माना जा रहा है क्योंकि लाखों हिंदू चाहते हैं कि फिजिक्स केमेस्ट्री बायोलॉजी साइंस और गणित के साथ उनके बच्चे अपनी संस्कृति से जुड़ें और उन्हें पाठ्यक्रम में वैदिक शिक्षा मिले। निस्संदेह भारतीय शिक्षा बोर्ड का दूरगामी परिणाम यह होगा कि, इससे आने वाली पीढ़ी वर्तमान की वामपंथ से प्रभावित शिक्षा प्रणाली से मुक्त हो जाएगी। अब तक धर्मनिरपेक्षता और आधुनिक शिक्षा के नाम पर स्कूली पाठ्यपुस्तकों में हिंदू-विरोधी एजेंडे को परोसा गया था।

बी० एस० बी० के स्थापित होने से फायदा मिलेगा । कक्षा १२ तक अपना अलग शैक्षणिक मॉडल चलाने की मंजूरी मिल जाएगी। फिलहाल, सी०बी०एस०ई० जैसे स्कूल बोर्ड इसकी अनुमति नहीं देते हैं। नये भारतीय शिक्षा बोर्ड से हमें आशा है कि भारत में हम वो युवा नेतृत्व गढ़ेंगे, जो भारत ही नहीं पूरे विश्व में नेतृत्व करेंगे। साथ ही यह देश का पहला राष्ट्रीय स्कूल बोर्ड माना जाएगा और उसे सिलेबस तैयार करने, स्कूलों को संबद्ध करने, परीक्षा आयोजित करने और प्रमाण पत्र जारी करके भारतीय पारंपरिक ज्ञान का मानकीकरण करने का अधिकार होगा। वह आधुनिक शिक्षा के साथ इसे मिश्रित करके भारतीय परंपरा के अनुसार पढ़ाई करवाएगा। ❑❑

॥ ओ३म् ॥

ऋषिभक्त और आर्ष साहित्य के प्रचार में अनन्य निष्ठावान– लाला दीपचन्द आर्य

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : ०९४१२९८५१२१)

भारत में मध्यकाल में देश में अविद्या छा जाने के कारण जो नाना अन्धविश्वास एवं कुरीतियाँ उत्पन्न हुईं उससे अनेक मत-मतान्तर उत्पन्न हुए और इनसे परस्पर वैर-भावना में वृद्धि हुई। ऋषि दयानन्द ने अपने अथक परिश्रम से इसका कारण जाना और पाया कि वेदों में निहित सत्यज्ञान को भूल जाने के कारण ऐसा हुआ। उन्होंने लोगों को उपदेश, विधर्मियों से शास्त्रार्थ एवं सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के लेखन द्वारा विलुप्त सत्यज्ञान को पुनः प्रकाशित किया जिससे देश पुनः उन्नति की ओर अग्रसर हुआ।

ऋषि दयानन्द ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए १० अप्रैल, १८७५ को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इसके माधयम से आर्यसमाज के अनुयायियों ने वेदप्रचार सहित अविद्या नाश एवं समाज सुधार के उल्लेखनीय कार्य किये। आर्यसमाज के प्रचार से प्रभावित होकर दिल्ली के ऋषि-भक्त लाला दीपचन्द आर्य जी ने मानव-जाति की उन्नति तथा ऋषि के स्वप्नों को साकार करने के लिए वैदिक साहित्य के प्रकाशन एवं इसके प्रचार-प्रसारार्थ **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट** की स्थापना की और उसके माधयम से वैदिक धर्म की अविस्मरणीय सेवा की।

लाला दीपचन्द आर्य जी का जन्म हरियाणा राज्य के गुड़गांव जिले के धरुहेड़ा ग्राम में दिन बुधवार, माह भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को विक्रमी सम्वत् १९७६ (१३-८-१९१९) में एक वैश्य परिवार में हुआ था। दिल्ली में साबुन उद्योग को आपने अपने व्यवसायिक कार्य के लिए चुना और इसमें आशातीत सफलता प्राप्त की। दिल्ली में आपने पं० रामचन्द्र देहलवी सहित अनेक विद्वानों के प्रवचन सुन कर आर्य सामाजिक साहित्य को पढ़ा और आर्यसमाज, नया बांस, दिल्ली के सदस्य बन गये। एक बार आपने दिल्ली के खारी बावली क्षेत्र में एक पुस्तक विक्रेता को सड़क पर रखकर सस्ते मूल्य पर ईसाई मत की पुस्तकों को बेचते देखा। बड़ी संख्या में लोगों को उन पुस्तकों को खरीदते देख कर आपने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि साहित्य सस्ता हो तो जनता उसे खरीदती व पढ़ती है। इस घटना से प्रेरित होकर आप आरम्भ में अन्य प्रकाशकों से महर्षि दयानन्द के प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को बड़ी संख्या में खरीद कर उसे सस्ते मूल्य पर वितरित करने लगे। ऐसा करके आपकी सन्तुष्टि नहीं हुई। आपने सन् १९६६ में अपनी स्वोपार्जित पूंजी से दिल्ली में **"आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट"** की स्थापना की।

इस ट्रस्ट का उद्देश्य आर्ष साहित्य का अन्वेषण, रक्षा, सम्पादन, शुद्ध मुद्रण एवं प्रकाशन तथा लागत से भी कम मूल्य पर इसका पाठकों में वितरण करना था व अब भी है। इस दिशा में ट्रस्ट ने लाला दीपचन्द

आर्य जी के जीवन काल में अपूर्व सफलता के साथ कार्य किया और एक इतिहास रचा।

ट्रस्ट के प्रकाशनों में सत्यार्थप्रकाश मुख्य ग्रन्थ है। इसके ट्रस्ट ने अनेक संस्करण प्रकाशित किये हैं। इस ग्रन्थ के अब तक १०० से अधिक संस्करण व १६ लाख से भी अधिक प्रतियां कई भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। यह प्रकाशन ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में तैयार संशोधित सत्यार्थप्रकाश जो उनकी मृत्यु के कुछ महीनों बाद प्रकाशित हुआ था, उस द्वितीय संस्करण को प्रामाणिक मानकर किया गया। लाला दीपचन्द आर्य जी ने पहले **'सत्यार्थप्रकाश'** के प्रथम संस्करणों की फोटो प्रति को ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया और उसके पश्चात उनसे मिलान कर आगामी संस्करण प्रकाशित किए। इस प्रकार महर्षि दयानन्द की पुस्तकों के पाठों के संरक्षण का अतीव महत्वपूर्ण कार्य लाला दीपचन्द आर्य जी वा उनके ट्रस्ट द्वारा किया गया। ट्रस्ट ने अन्य जो महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये उनमें ऋषि दयानन्द के लघु ग्रन्थों का संग्रह, यजुर्वेद भाष्य भास्कर, यजुर्वेद-भाष्य भाषानुवाद, ऋग्वेद भाष्य भास्कर के कुछ खण्ड, ऋषि दयानन्द के पं० लेखराम और पं० गोपाल राव हरि द्वारा लिखित जीवन चरित, पं० राजवीर शास्त्री द्वारा लिखित विशुद्ध मनुस्मृति, डा० सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा सम्पादित मनुस्मृति जिसमें प्रक्षिप्त श्लोकों की विस्तृत समीक्षा भी है, वेदार्थ कल्पद्रुम, ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थों का संग्रह, दयानन्द वेदार्थ प्रकाश, उपनिषद्-प्रकाश आदि अनेक ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

ट्रस्ट की गतिविधियों का आर्य जनता को परिचय देने, वैदिक साहित्य पर शोधमूर्ण एवं सामयिक तथा पाठकोपयोगी प्रचारात्मक लेखों का प्रकाशन भी वेदों के प्रचार प्रसार में सहायक होता है। इस दिशा में ट्रस्ट ने सन्, १९७२ में **'दयानन्द सन्देश'** नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जो अद्यावधि जारी है। इस पत्रिका का आर्यजगत की सभी पत्र-पत्रिकाओं में गौरवपूर्ण स्थान है। यह पत्रिका आर्यजगत के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान पं० राजवीर शास्त्री के सम्पादन में प्रकाशित होती रही। समय-समय पर इस पत्रिका ने गवेषणा एवं शोध से पूर्ण विशेषांकों का प्रकाशन भी किया। वेदार्थ समीक्षा, वैदिक मनोविज्ञान, जीवात्म-ज्योति, अद्वैतवाद एवं त्रैतवाद, काल अकाल मृत्यु, आर्य मान्यतायें, युग पुरुष राम, योगेश्वर कृष्ण, योग मीमाँसा आदि अनेक महत्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किये गये जिनका आज भी महत्व है और भविष्य में भी रहेगा। **दयानन्द सन्देश** अन्य लेखों के साथ सरिता व लोकालोक पत्रिकाओं में वैदिक मान्यताओं के विरुद्ध प्रकाशित लेखों का भी युक्तियुक्त एवं प्रमाण पुरस्सर उत्तर वा खण्डन प्रकाशित करती रही है। वर्तमान में यह पत्रिका **श्री धर्मपाल आर्य जी** के कुशल सम्पादन में प्रकाशित की जा रही है।

ट्रस्ट ने अनुसन्धान के क्षेत्र में अनेक कार्य किए हैं। ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद एवं ऋग्वेद भाष्य पर आर्यजगत के दो प्रसिद्ध विद्वानों पं० सुदर्शन देव आचार्य एवं पं० राजवीर शास्त्री से भास्कर नाम से विस्तृत टीकायें प्रकाशित की जिन्हें ट्रस्ट की ओर से भव्य साज-सज्जा के साथ प्रकाशित किया गया। यजुर्वेद का कार्य तो पूरा हो गया परन्तु किन्हीं कारणों से ऋग्वेद पर आरम्भ किया गया कार्य ग्रन्थ के दो या तीन भाग प्रकाशित होने के बाद आगे नहीं बढ़ सका। यदि लाला दीपचन्द आर्य जी की २८ दिसम्बर, १९८१ को आकस्मिक मृत्यु न हुई होती तो सम्भवत: यह कार्य आगे भी जारी रहता। इनके अतिरिक्त ट्रस्ट ने पं० राजवीर शास्त्री जी के सम्पादन में विशुद्ध

मनुस्मृति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्करण भी प्रकाशित कराया। **इस संस्करण से लाला जी व ग्रन्थ के सम्पादक पं० राजवीर शास्त्री दोनों अमर हो गये।** इसके नये संस्करण की हम आवश्यकता अनुभव करते हैं जिसमें इसी सामग्री का प्रकाशन हो। ट्रस्ट ने मनुस्मृति का एक विस्तृत बृहद संस्करण भी डॉ० सुरेन्द्र कुमार जी के सम्पादन में प्रकाशित किया है।

वैदिक साहित्य के प्रचार हेतु लाला दीपचन्द आर्य जी ने एक वाहन भी खरीदा था और इसके लिए एक प्रचारक और ड्राइवर नियुक्त कर उन्हें देश के अनेक भागों में प्रचारार्थ भेजा था। इससे महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अपूर्व प्रचार हुआ। यह वाहन उनके जीवनकाल में एक बार जब देहरादून आया तो हमने उसे देखा था। उसमें साहित्य भरा होता था। क्या गांव क्या शहर, इस वाहन से सर्वत्र सत्यार्थप्रकाश का बड़ी मात्रा में प्रचार हुआ। काशी में शास्त्रार्थ शताब्दी के अवसर पर आपने काशी के विद्वानों का स्वामी दयानन्द की मान्यताओं के विरुद्ध आक्षेपों का युक्तियुक्त समाधान किया जिससे लाला दीपचन्द आर्य जी के गहन स्वाध्याय एवं वैदुष्य का लोगों को ज्ञान हुआ था। इस शास्त्रार्थ में आपने **'भोगसाधन-मिन्द्रयम्'** के आधार पर वेदों से मूर्तिपूजा सिद्ध करने पर बड़ी आर्थिक राशि पुरस्कार के रुप में देने की घोषणा की थी। दिल्ली में पौराणिक विद्वान पं० सुरेन्द्र शर्मा एवं आर्य विद्वान् पं० वेदव्रत मीमांसक के बीच सृष्टि संवत् विषय पर सम्पन्न हुए शास्त्रार्थ के आप संयोजक थे।

लाला दीपचन्द आर्य जी में अनेक विशेषतायें थीं। **उन्होंने कभी कहीं किसी विद्वान को अपने सम्मान अथवा प्रशंसा में कुछ कहने का अवसर नहीं दिया।** यदि कभी किसी विद्वान ने कुछ कहा अथवा किसी ने लेख में उनके नाम का उल्लेख किया तब भी आपने अपनी पत्रिका **दयानन्द सन्देश में उसे छपने नहीं दिया ।** यही कारण है कि आर्यजगत के दो शीर्ष विद्वान पं० राजवीर शास्त्री और पं० सुदर्शन देव आचार्य आपके साथ जुड़े रहे। आपकी सफलता का एक प्रमुख कारण इन दोनों विद्वानों का आपको सहयोग करना भी रहा। सत्यार्थप्रकाश के प्रचार में आपकी रुचि का एक प्रेरक उदाहरण तब मिला जब दिल्ली के निकट के किसी स्थान के एक व्यक्ति द्वारा दूरभाष पर पूछताछ की गई। आप ने उस व्यक्ति से उसका पता पूछा और सत्यार्थप्रकाश की उस व्यक्ति की आवश्यकता से अधिक प्रतियां अपनी गाड़ी में डालकर कुछ ही समय में उसके निवास पर जा पहुँचे। ऐसा करते हुए आपने अपने व्यवसाय की किंचित चिन्ता नहीं की और काफी देर तक उससे बातें करते रहे। इन पंक्तियों के लेखक को भी ४६ वर्ष पूर्व जून, १९७६ में आपने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की प्रेरणा करते हुए अनेक सुझाव दिए थे। २८ दिसम्बर, सन् १९८१ की रात्रि को नौ बजे दिल्ली में आप दिवंगत हुए। आपकी मृत्यु आर्यजगत की अपूरणीय क्षति थी। आर्यसमाज आपकी सेवाओं सहित ट्रस्ट से मिलने वाले अनुसंधनपूर्ण नवीन वैदिक साहित्य से वंचित हो गया।

लाला दीपचन्द आर्य जी की मृत्यु पर पं० राजवीर शास्त्री ने अपनी श्रद्धांजली में उन्हें महात्मा दीपचन्द आर्य के नाम से स्मरण किया। वेद विज्ञानाचार्य पं० वीरसेन वेदश्रमी के अनुसार लाला जी आर्ष ग्रन्थों के दीवाने थे। डा० भवानीलाल भारतीय जी ने लाला दीपचन्द आर्य जी की विनयशीलता, अतिथि सत्कार, गुण-ग्राहकता एवं विद्वानों के सम्मान को आदर्श एवं अनुकरणीय बताया है। जयपुर के डा० सत्यदेव आर्य ने लाला जी को अत्यन्त सरल, सौम्य एवं स्नेहिल स्वभाव वाला पुण्यात्मा एवं वैदिक

(शेष पृष्ठ २२ पर)

॥ ओ३म् ॥

रामायण के ये कैसे रहस्य !

—राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९११२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! अभी पिछले मास में बहुत स्थानों पर 'वेद सप्ताह' मनाया गया। आर्यसमाज के मंच से एक तथाकथित विद्वान् का सरस प्रवचन सुनकर श्रोता भाव विभोर हो रहे थे। पर उनकी एक बात से मैं सहमत नहीं हो सका कि सीता का पुत्र तो लव ही था। कुश तो किसी अविवाहित युवती से उत्पन्न हुआ था व उसके द्वारा महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के पास कुशा के जंगल में छोड़ा गया था। उसे आश्रम में लाकर सीता को दिया गया। सीता ने उसका भी पुत्रवत् पालन किया। कई श्रोता भी यह सुनकर विचलित हो गए। बाद में मैंने विद्वान् वक्ता से एकान्त में पूछा—आचार्य जी, मैंने बचपन में अपनी अनपढ़ माँ से यह तो सुना था कि कुश को महर्षि वाल्मीकि ने कुशा से बनाया था, पर अब यह बात पहली बार सुनी है कि कुश किसी अविवाहित युवती की सन्तान था। इसका क्या प्रमाण है?

वे बोले—संसार में ३०० प्रकार की रामायण हैं। मैंने कहा आचार्य जी, चाहे ६०० प्रकार की हों, आपने किस रामायण में पढ़ा है। बात को घुमाते हुए वे बोले—अमुक देश में महाभारत मिली है, उसमें गीता के ७० श्लोक हैं। मैंने कहा—आचार्य जी, प्रसंग तो रामायण का चल रहा है, महभारत को बाद में देखेंगे। आप इस विषय में बताइये। वे बोले—ब्रह्मचारी कृष्ण दत्त ने अपने प्रवचनों में कहा है। मैंने कहा—आचार्य जी, प्रवचन का भी तो प्रमाण होना चाहिए। वे बोले—उनमें शृंगी ऋषि की आत्मा थी। क्या ऋषि की बात प्रमाण नहीं होती? मैंने कहा—आचार्य जी, आप आर्यसमाज के मंच से ३०० प्रकार की रामायण की बात कहकर रामायण को इतिहास से काट रहे हो। दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से कुछ वर्ष पूर्व बड़े संघर्ष के बद प्रो० रामानुजम् के लेख 'थ्री हण्डरेड रामायण' को हटवाया था जो यह कहता था कि रामायण इतिहास नहीं काल्पनिक काव्य है क्योंकि संसार में ३०० प्रकार की रामायण हैं, किसे प्रमाण माना जाए?

यूं तो लोग ऋषियों व महापुरुषों (देवताओं) को भी कलंकित करने वाले भागवत आदि पुराणों को महर्षि वेदव्यास की रचना मानते हैं। क्या पुराणों का अक्षर-अक्षर प्रमाण हो सकता है? वे भी तो ऋषि थे। और क्या दुराचार से उत्पन्न हुई सन्तान महान् (ऋषि योद्धा) बन सकती है? फिर आप द्वारा गृहस्थियों को यह उपदेश क्यों दिया जाता है कि गर्भस्थ शिशु के निर्माण के लिए माता-पिता को सदाचारी व संयमी रहना चाहिए?

वे बोले—आप दुराचार किसे मानते हो? मैंने कहा—आचार्य जी, विवाह से पूर्व कन्या द्वारा बच्चे को जन्म देना दुराचार ही तो है। तभी तो उस पाप को छुपाने के लिए उत्पन्न शिशु जंगल में छोड़ा होगा, अन्यथा वह कन्या उसे अपने घर क्यों नहीं ले गई? आप ब्र० कृष्ण दत्त की हर बात को मानने का हठ क्यों कर रहे हो? वे बोले—यूं तो हमारे पास ऋषि दयाननद की बातों को सिद्ध करने के लिए भी कोई प्रमाण नहीं है। स्वामी जी ने नियोग की बात कही है, क्या समाज उसे मान लेगा?

मैंने कहा—आचार्य जी, ऋषि दयानन्द ने वेद

के आधार पर और इतिहास (महाभारत आदि) के आधार पर केवल आपत्तिकाल के लिए नियोग का विधान किया है, वह भी समाज की सहमति से, गुप-छुप नहीं। इसके पीछे ऋषि दयानन्द के उद्देश्य बार-बार के विवाह से बचना था। चलो, समाज ने नियोग को बुरा माना, तो उसे लागू करने की जबरदस्ती नहीं है, पर अब हम आधुनिक समाज में देख रहे हैं कि एक ही गांव के लड़के-लड़की कोर्ट में जाकर शादी कर लेते हैं और समाज न चाहते हुए भी चुप है। पढ़े लिखे लड़के-लड़की बार-बार शादी कर रहे हैं। बहुत से लिव इन रिलेशनशिप में रहना पसन्द करने लगे हैं। विदेशों की नकल पर समलैंगिक विवाह भी होने लगे हैं। इन सबके विरुद्ध समाज ने कभी कोई आन्दोलन किया हो, तो बताइये। आचार्य जी बस रहने दो, जब आप ब्रह्मचारी कृष्ण दत्त को ऋषि दयानन्द से बढ़कर मान रहे हो, तो आपके लिए कोई प्रमाण नहीं है। मैंने तो आपसे केवल इतना ही निवेदन करना था कि आर्यसमाज के 'प्रामाणिक' मंच से ऐसी अप्रामाणिक बातें न कहें तो अच्छा है।

अब हम ब्रह्मचारी कृष्णदत्त के प्रवचनों पर आधारित पुस्तक 'रामायण के कुछ रहस्य' के कुछ प्रसंगों को देखते हैं जो उनकी प्रामाणिकता को संदिग्ध बना रहे हैं। 'पुत्रेष्टि यज्ञ' प्रवचन में ब्रह्मचारी कृष्णदत्त बनाम शृंगी ऋषि योग मुद्रा में कहते हैं–

"मुझे इसका निदान करने का सौभाग्य मिला। मैंने तीनों रानियों को एक पंक्ति में एकत्रित किया। उस समय मैं नहीं जानता था कि पुत्रीवत् कैसे होता है? मैंने आयुर्वेद के सिद्धान्त से कहा कि तुम मुझे अपनी योनियों को दिग्दर्शन कराओ। जब तक मैं योनि को नहीं जानूँगा तब तक मैं यज्ञशाला भी कैसा बनाऊँगा?.....तत्पश्चात् उन सब पुत्रियों ने मुझे अपना दिग्दार्शन कराया। मुनिवरो ! आयुर्वेद के पण्डित को इसमें दोषारोपण नहीं होता। इस प्रकार मैंने उनकी योनियों को जाना।"

सोचिये, शृंगी ऋषि यज्ञ के ब्रह्मा बनकर गये थे या आयुर्वेदाचार्य? यदि इस कार्य में दोषारोपण नहीं होता, तो क्या मुनिवरों को यह नहीं पता था, जो शृंगी ऋषि ने उन्हें बताया? यदि योनि देखकर यज्ञशाला बनाने का सामानय नियम होता, तो इस बात को कहने की आवश्यकता क्या थी? क्योंकि अच्छा-बुरा सब कुछ बताना (सार्वजनिक तौर पर) आवश्यक नहीं होता।

पृष्ठ २५ पर लिखा है कि महर्षि विश्वमित्र द्वारा राम के माँगे जाने पर दशरथ ने मोहवश इन्कार कर दिया तो पास ही राजसिंहासन पर बैठी कौशल्या ने कहा–भगवन् ! आप मोह क्यों करते हैं। मैंने जो अपने पुत्र को जन्म दिया है वह आज के दिवस के लिये ही है। ....और राजा ने कहा कि जब तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो राम और लक्ष्मण दोनों ही जाने चाहिए।" जबकि महर्षि वाल्मीकि जी लिखते हैं कि मोह में पड़े दशरथ को महर्षि वशिष्ठ ने समझाया था।(वा०रा०, एकविंश: सर्ग)

'भगवती माता सीता' शीर्षक में शृंगी ऋषि जी प्रवचन दे रहे हैं–'मुनिवरो ! लव का जन्म देखो' वाल्मीकि के आश्रम में हुआ था और कुश कुशा के वन में मिला। परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि सीता लव को त्याग अंजलि में जल लेने गई, तो वह प्राप्त नहीं हुआ, तो वाल्मीकि ऋषि ने तपस्या के द्वारा कुश को जन्म दिया। परन्तु ऐसा नहीं था।

ऐसा मुझे स्मरण है कि शकुन्तला नाम की एक कन्या थी, वह महाराजा स्वाति के आश्रम में परिणित रहती थी। तब स्वातान नाम के ऋषि उनके आश्रम में प्रविष्ट हुए। 'मना वाचनम् ब्रह्म' मानो मन की गति चंचल होने पर उन ऋषि से

गर्भ की स्थापना हो गई। उसने गर्भ के बालक को वन में कुशा के आसन पर विराजमान करके वालमीकि आश्रम के निकट त्याग दिया। यह बालक महर्षि वाल्मीकि को प्राप्त हो गया और माता सीता ने दोनों पुत्रों का पालन किया।'

'अतीत का दिग्दर्शन' भाग-३ में संगृहीत इन्हीं शृंगी ऋषि के प्रवचन में लिखा है–कुछ समय के पश्चात् ऐसा कारण हुआ कि महर्षि सुरन्धित की एक कन्या थी जिसका नाम सुमित्रा था। वह ऋषि कन्या थी परन्तु किसी कारणवश किसी 'अस्तुत्य शब्रोणो' से वह गर्भवती रह गई। कुछ समय के पश्चात् उसके बालक हुआ और वह उस बालक को कुशा पर रखकर उसे वाल्मीकि आश्रम के निकट छोड़कर अपने आश्रम चली गयी। जब सीता पवित्र जलपान ग्रहण करने के लिए गई तो उसे यह बालक प्राप्त हो गया।

सुमित्रा ऋषि कन्या थी। एक ब्रहित नाम के ब्रह्मचारी सुरन्धित ऋषि के आश्रम में आए और सुमित्रा से दृष्टिपात हुआ।....."(पृ० २६२)

देखिये, शृंगी ऋषि जी कन्या का नाम कभी शकुन्तला बताते हैं और कभी सुमित्रा। गर्भ स्थापित करने वाले को कभी शृंगी ऋषि स्वातन बताते हैं और कभी ब्रह्मचारी ब्रहित। कभी कहते हैं कि बालक महर्षि वाल्मीकि को मिला और कभी कहते हैं सीता को मिला। एक ही व्यक्ति, नहीं नहीं ऋषि के कथन में विरोध क्यों ?

यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के उत्तर काण्ड (प्रक्षिप्त) में मिलता है–

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत्।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥
एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ।
मत्कृताभ्यां च नामाभ्यां ख्यातियुक्तौ
भविष्यतः॥
(उ० का० ६६-१,९)

"जिस रात को शत्रुघ्न ने पर्णशाला में प्रवेश किया था उसी रात में सीता जी ने दो पुत्रों को जन्म दिया।" इस प्रकार जुड़वे उत्पन्न हुए ये दोनों बालक क्रमशः लव और कुश नाम धारण करेंगे और मेरे (महर्षि वाल्मीकि) द्वारा निश्चित किये गये इन्हीं नामों से भूमण्डल में विख्यात होंगे।"

वाल्मीकि-रामायण का प्रसंग प्रक्षिप्त (मिलावट) तो है क्योंकि राम ने सीता का परित्याग नहीं किया था, पर जुड़वां पुत्र उत्पन्न होना असम्भव नहीं है। इसमें शृंगी ऋषि जी ने यह कल्पना तो अच्छी की है कि उत्तम सन्तान (गर्भस्थ) का निर्माण करने के लिए राम ने सीता को राजमहल के वातावरण से हटाकर वन (आश्रम) के शान्त और पवित्र वातावरण में भेजा था। यदि ऐसा था, तो क्या राम को सीता की कोई खोज-खबर बीच-बीच में नहीं लेनी चाहिए थी? जबकि कहानी के अनुसार तो पुत्रों के पैदा होने की खबर भी राम को नहीं मिली और वर्षों बाद पिता-पुत्र मिले, तो आपस में ही भिड़ गये।

जबकि वा० रा० के बालकाण्ड चतुर्थ सर्ग के अनुसार लव-कुश महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पढ़ते हुए अयोध्या में आकर राम के दरबार में रामायण का संगीतमय गान करते हैं। यदि वे अपरिचित होते तो उनका परिचय अवश्य पूछा जाता। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पढ़ने के लिए ही भेजा गया था। उनका जन्म तो लक्ष्मण, भरत आदि के पुत्रों की भांति महल में ही हुआ था। यद्यपि ब्र० कृष्णदत्त की यह कल्पना अच्छी है पर यह भी तो सीता परित्याग की कहानी पर मोहर लगाती है। इनसे अच्छे तो तुलसीदास जी ही रह गए, जिनहोंने अपने 'रामचरित मानस' में 'सीता वन गमन' प्रसंग की चर्चा ही नहीं की। जबकिशृंगी ऋषि जी पुराणों की तर्ज पर ऋषि (या ब्रह्मचारी) को ही दुराचारी बना गये। कुन्ती-

कर्ण के प्रसंग में भी इन्होंने ऐसी ही कल्पना की है–

कुन्ती ब्रह्मचारी वरुण (२८४ वर्षीय) के आश्रम में रहकर विद्या से सम्पन्न हो गई और फिर यौवन को प्राप्त हुई। उस समय कुछ ऐसा कारण हुआ कि वहाँ श्वेत मुनि आ पहुँचे। ....उन दोनों ने एक दूसरे को देखा। .....उस कन्या के कुछ समय पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ। .....गुरु जी के कहने से उसने उसे गंगा में तिलाञ्जलि दे दी। .....वह बालक बहता हुआ उसी श्वेत मुनि के आश्रम के पास जा पहुँचा। उनके शिष्य मण्डल ने कुशा से उस बालक को निकालकर अपने गुरु के पास पहुँचाया। उसी ब्रह्मचारी द्वारा उस बालक (कर्ण) की शिक्षा हुई।" (पृ० २८५-२८७)

क्या ही अच्छा होता यदि ब्र० कृष्णदत्त यह कह देते कि कर्ण सूत पुत्र था। वह अधिरथ की पत्नी राधा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, तभी तो राधेय कहलाया, कौन्तेय नहीं। यदि महाभारत, आदि पर्व के १३१वें अध्याय का ११वाँ श्लोक प्रमाण माना जाये, तो राधानन्दन सूतपुत्र कर्ण भी द्रोणाचार्य के पास ही शिक्षा लेता था– **"सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणानियात् तदा।"**

अच्छा हुआ ये शृंगी ऋषि पहले पैदा नहीं हुए। नहीं तो इस कहानी को सुनकर कालिदास जैसा महाकवि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की तरह एक और प्रेम कथा लिख देता। पौराणिक कहानियों की शुद्धिकरण (नयी व्याख्या) के बहाने ब्र० कृष्णदत्त ने एक और ऋषि को दुराचारी बना दिया और एक कथित विद्वान् इसे 'दिव्य आत्मा' का 'दिव्य संयोग' कहकर गन्दगी पर पर्दा डालना चाहते हैं। फिर तो कृष्ण गोपियों की दुराचार लीला को अलौकिक (अभौतिक) प्रेम बताने वाले भी सच्चे हो जाएँगे। पर अब तो वे भी खुलकर कहने लगे हैं श्री कृष्ण लीलानुकरण हानिकारक है। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने लिखा है–

"इस मायिक जगत् में श्रीकृष्ण की और गोपियों की दिव्य लीला का अनुकरण कदापि नहीं हो सकता, न ऐसा दुस्साहस किसी को कभी करना ही चाहिये। .....उन (स्त्री-पुरुषों) की वही दशा होगी, जो सुन्दर फूलों के हार के भरोसे अतयन्त विषधर नाग को गले में पहनने वालों की होती है।" (कल्याण, फरवरी २०१९, पृ० १०-११) (क्रमशः) ❑❑

लाला दीपचन्द आर्य (पृष्ठ १८ का शेष)

सिद्धान्तों में अटूट आस्था रखने वाला सच्चा आर्य कहा है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान पं० युधिष्ठिर मीमाँसक जी ने उनको श्रद्धांजलि देते हुए लिखा कि लाला दीपचन्द आर्य जी ने अपनी चंचला लक्ष्मी को श्री एवं यशस्वी रुप में बदलने का जो सत्कार्य किया है उससे वह भी उन्हें सदा अमर रखेगी। आर्य विद्वान प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट को लाला दीपचन्द आर्य जी की आर्यसमाज को सबसे बड़ी देन कहा और ट्रस्ट को ही लाला जी का स्मारक बताया। हम लाला दीपचन्द आर्य जी को आर्यसमाज के महाधन पुण्यात्माओं से बनी माला का एक मूल्यवान मोती समझते हैं। हम ऋषि दयानन्दभक्त, आर्ष साहित्य के अनन्य प्रेमी एवं प्रचारक महात्मा दीपचन्द आर्य जी को उनके १०३ वें जन्म दिवस पर अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं। ओ३म् शम्। ❑❑

• सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये

मन्त्र - तन्त्र - यन्त्र

–नरेशदत्त आर्य

ज्यादातर मनुष्य पूजा पाठ में बोले जाने वाले श्लोकों को ही मन्त्र समझते हैं। और जादू, टोना, टोटकों, को ही तन्त्र समझते हैं। किन्तु लोगों की ये धारणा गलत है।

मन्त्र विचार को कहते हैं। और विचार, मन्त्र, मन्त्रणा, देने वाले को ही मन्त्री कहते हैं। मनुष्य मन से कल्पना करता है।

यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति ।
यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति ।
यत् कर्मणा करोति तद् भिसम्पद्यते ।

कल्पना दो प्रकार की होती हैं–

एक संकल्प, दूसरा विकल्प। लेकिन जब मन्थन करते हैं मन्त्रणा करते हैं, तब विकल्प समाप्त हो जाता है। केवल संकल्प ही रह जाता है।

जिसे ऋग्वेद में कहा है–

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

हों विचार समान सब के चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।।

विचारों की समानता से एक व्यवस्था बनती है। उसी व्यवस्था को संस्कृत में तन्त्र, अंग्रेजी में सिस्टम कहते हैं। जैसे लोकतन्त्र, प्रजातन्त्र।

प्रश्न–यन्त्र किसे कहते हैं।

उत्तर–विचार पूर्वक सिस्टम से अर्थात् तन्त्र से कार्य करने वाली मशीनरी अर्थात् उपकरण का नाम यन्त्र है।

तन्त्र दो प्रकार के होते हैं :–१. स्वतन्त्र और २. परतन्त्र। दोनों के साथ तन्त्र शब्द जुड़ा हुआ है। बिना तन्त्र, बिना व्यवस्था, बिन सिस्टम के कोई कार्य नहीं हो सकता।

प्रश्न–परतन्त्र और स्वतन्त्र में क्या अन्तर है।

मैं जो कुछ बोल रहा हूँ। स्व अपने तन्त्र विचार से बोल रहा हूँ। किन्तु जब रेडियो पर ब्राड कास्ट करेंगे तो इसे सुनकर विचार करेंगे ये शब्द गलत बोल दिया इससे प्रधानमन्त्री जी नाराज हो सकते हैं। आपने उसे निकाल दिया। बोलने में मैं स्वतन्त्र था। ब्राडकास्ट में मैं परतन्त्र हूँ। इसलिए–

प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र भी है और परतन्त्र भी है। कर्म करने में स्वतन्त्र है। फल भोगने में परतन्त्र है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज का दसवां नियम लिखते हैं।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें ।

एक उदाहरण से समझ में आ जायेगा–

दो व्यक्ति होटल में गये दोनों ने एक-एक कमरा किराये पर लिया। होटल के मालिक ने कहा आप अपने सामान की स्वयं रक्षा करें दरवाजा बन्द रखना। यदि चोरी हो गई तो हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं। दोनों व्यक्ति खाना खाकर लेट गये, एक व्यक्ति ने सोचा कोई सामान न ले जाये। इसने अन्दर से दरवाजा बन्द किया और सो गया। दूसरे कमरे का दरवाजा खुला देखकर होटल मालिक ने बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया। अब जिसने अन्दर से दरवाजा बन्द किया। वह दरवाजा बन्द होने पर भी स्वतन्त्र है। स्व अर्थात् अपनी व्यवस्था में रहना ही स्वतन्त्रता है। जिसने अन्दर से दरवाजा बन्द किया है वो चैन की नींद सोता है। और

जिसका दरवाजा बाहर से बन्द है। पर अर्थात् दूसरे की व्यवस्था में रहना परतन्त्रता है। वह चिल्लाता है, घबराता है नींद नहीं आती है।

इसीलिए तुलसीदास जी ने भी लिखा–

पराधीन सपनेहु सुख नाहिं ।

इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं–

अपने देश में अपना राज्य सर्वोत्तम सर्वोपरि होता है।

इसी वाक्य से प्रेरणा लेकर–बाल गंगाधर तिलक ने नारा लगाया था।

स्वराजय मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं इसे लेकर ही रहूँगा।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था–

तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।

शहीद भगतसिंह जी का भी एक संकल्प था–

लिख रहा हूँ मैं अंजाम जिसका कल आगाज आयेगा।
मेरे लहू का हर एक कतरा इंकलाब लायेगा ॥
मैं रहूँ या ना रहूँ पर ये वादा है तुमसे मेरा।
मेरे बाद वतन पर मरने वालों का सैलाब आयेगा॥

स्वतन्त्रता कब मिलती है–

जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होगा।

इसीलिए वेद में आता है–

वयं राष्ट्रे जाग्रयाम पुरोहिता ।
यो जागार तमृचा कामयन्ते ।

तब सच्ची स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को मिलेगी।

महाभारत में आया है–

सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ता ।
सर्वे लोकाः राजधर्मे प्रविष्टाः ।
सर्वे धर्मा राजधर्म प्रधानाः॥

सब विद्या राजधर्म में निहित है। सब लोग राजधर्म से प्रभावित हों । सब धर्मों में राजधर्म श्रेष्ठ है । राष्ट्र गुलाम होता है तो सभी गुलाम हो जाते हैं ।

जो डूबेगी कश्ती तो डूबोगे सारे ।
न तुम ही बचोगे न साथी तुम्हारे ॥

इसीलिए बच्चों से संकल्प कराते थे–

इन्साफ की डगर पर बच्चो दिखाओ चलके ।
ये देश है तुम्हारा नेता तुम्हीं हो कल के॥

ये बात हवाओं को बताये रखना ।
रोशनी होगी चिरागों को जलाये रखना॥

लहू देकर जिसकी हिफाजत हमने की ।
अपने राष्ट्र को सदा दिल में बसाये रखना॥

इन्हीं शब्दों के साथ सभी का धन्यवाद !

❑❑

अपूर्व विद्वत्ता

कर्णवास में अनूपशहर के पं० हीरावल्लभ जी अपने कतिपय साथियों के साथ स्वामी जी के पास आये और शास्त्रार्थ के लिए सभा संगठित हुई। पं० हीरावल्लभ ने बीच में ठाकुर जी का सिंहासन रख दिया, जिस पर शालिग्राम आदि की मूर्तियां थीं और प्रतिज्ञा की कि स्वामी जी से इन्हें भोग लगवाकर उठूंगा। छः दिन तक बराबर धाराप्रवाह संस्कृत में शास्त्रार्थ होता रहा। सातवें दिन हीरावल्लभ जी ने प्रकट कर दिया कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं वही ठीक है, और सिंहासन से मूर्तियों को उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया और सिंहासन पर वेद की स्थापना की।

स्वराज्य शब्द के जन्म दाता ऋषि दयानन्द

–पं० महेन्द्रपाल आर्य

आज लोग डींगे हाँक रहे हैं स्वराजय शब्द को लेकर, कि स्वराजय शब्द बाल गंगाधर तिलक जी की उपज है। उन्होंने कहा था कि स्वराज्य प्राप्त करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।

इतना कह देने मात्र से बात नहीं बनती पंडित बाल गंगाधर तिलक जी को यह स्वराज्य शब्द मिला कहाँ से उसे पहले देखना पड़ेगा।

दादा भाई नैरोजी ऋषि दयानन्द की लिखी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ते थे और इस पुस्तक को वह अपने सिरहाने के नीचे रखते थे। एक दिन पंडित बाल गंगाधर तिलक जी, दादा भाई नैरोजी के पास गये, और उन्हें सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक को पढ़ते देख कर तिलक जी ने कहा दादा भाई से क्या आप आर्यसमाजी बन गये हैं?

दादा भाई ने जवाब में कहा अरे भाई आर्य समाजी मैं बना या नहीं वह तो बात और हैं, पर इस पुस्तक में स्वामी दयानन्द जी ने स्वराज्य प्राप्त करने की बातें लिखी हैं। यह सुनने के बाद ही पंडित बाल गंगाधर जी ने इस शब्द को अपना मन्त्र बना लिया था। यह है सच्ची बातें, पर मैं कल सुदर्शन न्यूज चैनल में सुन रहा था। सुधांशु त्रिपाठी के विचार उन्होंने बाल गंगाधर जी की बात तो बताई, परन्तु इस स्वराज्य शब्द के जन्मदाता का नाम उनहोंने नहीं बताया।

वह नहीं जानते हैं ऐसी बात तो मैं नहीं कहूँगा किन्तु ऋषि दयानन्द का नाम लेने में इन लोगों को एलर्जी है। कारण यह लोग आर०एस०एस० के ट्रेनिंग शुदा हैं। इन लोगों को यह पता नहीं कि इस संगठन के जन्म दाता डॉ० केशव बलिराम हेडगेवार जी एक आर्यसमाजी विद्वान् के पुत्र थे। पिता का संस्कार डॉ० हेडगेवार जी पर भी रहा।

उनके निधन के बाद जब इस संगठन के प्रमुख गुरु गोलवरकर जी बने तो इसमें पूरी पौराणिकता को भर दिया, और आर्यसमाज की विचारधारा से बिल्कुल अलग कर दिया। और ऋषि दयानन्द का नाम लेना गुनाह समझने लगे, इसका मूल कारण है सिर्फ ऋषि दयानन्द जी ने मूर्ति पूजा को वेद विरुद्ध बताया।

मूर्ति पूजा करने से मानवों को मना किया कि मूर्ति को परमात्मा न मानो। मूर्ति में परमात्मा है परन्तु मूर्ति परमात्मा नहीं है। इस सत्यता को हिन्दू नामधारी हजम नहीं कर पाए, ऋषि दयानन्द का कहना है, किसी के स्वीकार करने अथवा न करने पर मैं सत्य कहना बन्द तो नहीं कर सकता? मेरा किसी से कोई विरोध नहीं है मेरा सत्य का प्रतिपादन ही एक मात्र उद्देश्य है, और यह प्रतयेक मानव कहलाने वालों के लिए सत्य का धारण और असत्य का परित्याग ही मानवता है।

इधर गुरु गोलवरकर जी ने तो कसम खाली कि हमें ऋषि दयानन्द की बात को मानना ही नहीं है। यही एक मात्र कारण है ऋषि दयानन्द की चर्चा RSS में नहीं होती। जहाँ तक संन्यासी की बातें हैं तो मूर्ति पूजक इन्हें चाहिए और गोमाँस खाने वाला भी चाहिए तो इन्हें स्वामी विवेकानन्द ही दिखाई पड़े, तो इन्होंने उन्हें ही पकड़ लिया।

यह है वह सत्यता जो मैं आप लोगों को बता रहा हूँ, रही बात प्रधानमन्त्री जी की तो वे भी उसी परम्परा से निकले तो ऋषि दयानन्द का नाम भी वह किस लिए लेते ? एक सच्चाई मैं और बताना चाहूँगा कि १५ अगस्त को मोदी जी ने भाषण में नारी सशक्तिकरण और नारी सम्मान

(शेष पृष्ठ २७ पर)

सुन्दरता

–स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक, रोजड़ गुजरात

"एक सुन्दरता तो चेहरे की होती है। और दूसरी सुन्दरता होती है, उत्तम आचरण की।" जो लोग चेहरे से सुन्दर दिखते हैं, यह आवश्यक नहीं है, कि वे आचरण से भी सुन्दर हों। अर्थात् उनका आचरण भी उत्तम हो, ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है। "बहुत से सुन्दर चेहरे वाले लोग, दुष्ट आचरण भी करते हैं। इसलिए चेहरे से सुन्दर दिखना एक अलग बात है, और उत्तम आचरण होना एक अलग बात है।"

और संसार में ऐसा भी देखा जाता है, कि जो उत्तम आचरण करने वाले लोग होते हैं, वे भी दोनों प्रकार के होते हैं। "किन्हीं लोगों का चेहरा सुन्दर होता भी है, और किन्हीं का चेहरा इतना सुन्दर नहीं भी होता। उनका रूप रंग अधिक आकर्षक नहीं होता, फिर भी उनका आचरण बहुत अच्छा होता है, जो लोगों को आकर्षित करता है।" "ऐसे लोग भी अपने उत्तम आचरण के कारण बुद्धिमान् लोगों को सुन्दर दिखाई देते हैं। वे मन की आँखों से सुन्दर दिखते हैं। उनके उत्तम आचरण से जो दूसरों को सुख मिलता है,उसके सामने, सुन्दर चेहरे से प्राप्त होने वाला सुख, फीका पड़ जाता है।"

सारी बात का सार यह हुआ, कि "किसी के चेहरे की सुन्दरता को देखकर ऐसा न मान लेवें, कि उसका आचरण भी अच्छा होगा, और वह 'चेहरा एवं आचरण' इन दोनों प्रकार से सुन्दर होगा।' और ऐसा भी नहीं है, कि "जिसका आचरण अच्छा हो, उसका चेहरा भी सुन्दर अवश्य ही होना चाहिए।"

"परन्तु यदि दोनों की तुलना करें, तो सुन्दर चेहरा इतना मूल्यवान नहीं है, जितना कि उत्तम आचरण। कारण यह है कि उत्तम आचरण ही अधिक सुखदायक है, न कि सुन्दर चेहरा।"

"यदि किसी का चेहरा तो सुन्दर हो, परन्तु आचरण से वह व्यक्ति दुष्ट हो, चरित्रहीन हो, तो वह व्यक्ति सुखदायक नहीं होगा।" "परन्तु यदि किसी का चेहरा अधिक सुन्दर न भी हो, और उसका आचरण उत्तम हो, तो वह व्यक्ति सुन्दर चेहरे वाले दुष्ट व्यक्ति की तुलना में अधिक सुखदायक होगा।" "इसलिए केवल सुन्दर चेहरे की ओर आकर्षित न हों। उत्तम आचरण वाले व्यक्ति की ओर आकर्षित होना चाहिए।"

"अत: सावधानी का प्रयोग करें। उत्तम आचरण वाले व्यक्ति को ही वास्तविक सुन्दर व्यक्ति मानें, और उसके साथ अपना जीवन बिता कर उससे सुख प्राप्त करें।" "यदि उत्तम आचरण वाले व्यक्ति का चेहरा भी सुन्दर हो, फिर तो बात ही क्या है ! तब तो सोने पर सुहागा।" ❑❑

ब्रह्मचर्य

ऋषि दयानन्द ब्रह्मचर्य की मर्यादा का कितना ध्यान रखते थे, उसका कुछ अनुमान इस घटना से किया जा सकता है कि एक दिन जब वे मथुरा में यमुनातट के विश्रांत घाट पर समाधिस्थ थे, उस समय एक देवी ने श्रद्धा से अपना सिर उनके पांव पर रख दिया तब उन्होंने प्रायश्चित रूप में ३ दिन का उपवास रखा था।

आर्यसमाज की दो भुजाएं हैं–एक वेद और दूसरी राष्ट्र (पृष्ठ १३ का शेष)

के पाखण्डों, अन्धविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के जनक होने के पौराणिक वेदाभिमानी पण्डितों द्वारा लगाए गए कलंक से मुक्त किया है, उसके पीछे राष्ट्रीय चेतना ही प्रमुख कारण थी। यदि उनके मन में यह राष्ट्रचेतना न होती, तो हो सकता है कि वेदों को इस रूप में उपस्थित न करते। क्या ऋषि दयानन्द से पहले किसी भी पूर्ववर्ती भाष्यकार ने वेदमन्त्रों के राष्ट्रपरक और राजनीति परक अर्थ करने का साहस किया है? इसका मूल कारण यही है कि पूर्ववर्ती भाष्यकारों में ऋषि जैसी राष्ट्रचेतना का विकास नहीं हुआ था, वे केवल आत्मचेतना के स्तर तक ही रह गए थे।

जब ऋषिवर सन् १८५५ में पहली बार हरिद्वार में कुम्भ के मेले पर गए थे, उससे पहले वे लगभग दस वर्ष तक योगियों, साधुओं, तान्त्रिकों और नाना मत-मतान्तरों में फँसे सामान्य नागरिको के सम्पर्क में आए थे और उन्होंने देश की दुर्दशा का निकट से अवलोकन किया था। इसी कारण उनकी आत्मचेतना राष्ट्रचेतना में विकसित होती जा रही थी। मेरे लिए यह प्रश्न गौण है कि सन् १८५७ की प्रथम राज्यक्रान्ति में ऋषि ने कोई सक्रिय भाग लिया या नहीं। मेरे लिए मुख्य यह है कि उनमें जिस सीमा तक राष्ट्रचेतना का परिपाक हुआ था, वह उनको शान्त नहीं बैठने दे सकती थी। उन्होंने १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर में सक्रिय भाग लिया हो या न लिया हो, पर इस पर तो किसी को विवाद नहीं है कि उन्होंने उस राज्यक्रान्ति को अपनी आँखों से विफल होते देखा था और उनकी राष्ट्रचेतना भविष्य में वैसी पराजय के लिए उन्हें किसी रचनात्मक दिशा को सोचने के लिए विवश कर रही थी। उसी मानसिक उथल-पुथल के बीच वे सन् १८६० में गुरु विरजानन्द की शरण में मथुरा पहुँचे थे। ❑❑

[स्रोत: पं० क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली, खण्ड १, पृष्ठ २०१-२०३, सम्पादक-द्वय : डॉ० विवेक आर्य एवं डा० वेदव्रत आलोक, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा]

स्वराज्य शब्द के जन्म दाता ऋषि दयानन्द (पृष्ठ २५ का शेष)

की बात कही। मुझे तो हंसी आ रही है लिखते हुए भी, इस हिन्दू मानसिकता में नारी सम्मान की बात कहाँ थी और कब थी?

इन हिन्दुओं ने नारी को पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगाया, इन्हें स्कूल जाने नहीं देते थे हिन्दू घराने के लोग। नारी शिक्षा की बात भी ऋषि दयानन्द जी की ही है, ये लोग एहसान फरामोश हैं सत्य को कभी स्वीकार करना ही नहीं चाहते। हिन्दू गुरु शंकराचार्य ने ही नारी को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है कहा, अगर कोई महिला वेद पढ़े तो उनका जीभ काट लिया जाए, और सुनने पर शीशा पिघला कर उनके कान में डालने की बात इन हिन्दुओं के गुरु की है।

आज अगर यह लोग नारी शिक्षा की बात करते हैं तो अनायास ही हंसी छूटने लगती है, नारी को वेद पढ़ाने की बात करके ऋषि दयानन्द जी ने वेद से निकाल कर दिया, 'स्त्री ब्रह्मा बभुविथ' और मनु-महाराज का भी हवाला ऋषि ने दिया है–**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।**

इस सच्चाई को हिन्दुओं ने स्वीकार करना भी तो उचित नहीं समझा, हिन्दू सत्य को जानने का भी प्रयास नहीं किया। ऋषि दयानन्द को नारी उद्धारक के नाम से जाना जाता है। इतिहास में ऋषि दयानन्द जी का नाम आता है। न जाने ये हिन्दू कहलाने वाले कौन-सा इतिहास पढ़ते हैं? माननीय प्रधानमन्त्री जी से आग्रह है कि एक बार आर्यसमाज के इतिहास को भी पढ़कर देखें, आप इतने पुस्तकों को पढ़ते हैं तो इसे भी एक बार जरूर पढ़ें। ❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०६/२०२२
भार ४० ग्राम

सितम्बर २०२२

रजिस्टर्ड नं० DL (DG-11)/8029/2021-23
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२१-२३
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2021-23

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएँ, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

–दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा
के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द एवं सुन्दर आकर्षक मुद्रण
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

	मुद्रित मूल्य	प्रचारार्थ
• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36+16	60 रु.	40 रु.
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36+16	100 रु.	30 रु.
• पॉकेट संस्करण	80 रु.	50 रु.
• विशिष्ट पॉकेट संस्करण	150 रु.	100 रु.
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30+8	150 रु.	100 रु.
• उपहार संस्करण	1100 रु.	750 रु.

प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति **सत्यार्थ प्रकाश** के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-6

Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा०.....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।